मूल्य दो रुपए

प्रथम संस्करण १९६९

प्रकाशक

कमलेश चतुर्वेदी, प्रबन्धक

आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राजस्थान)

०

प्रमुख वितरक

अणुव्रत विहार

२१०, राउज़ एवेन्यु, नई दिल्ली-१

मुद्रक रूपक प्रिंटर्स दिल्ली-३२

प्रस्तावना

नैतिकता का अर्थ है—हृदय की पवित्रता। जिसका हृदय पवित्र नहीं होता वह नैतिक नहीं हो सकता। बौद्धिक ज्ञान और नैतिकता में सम्बन्ध नहीं है यह कहकर मैं उसकी अवहेलना करना नहीं चाहता परन्तु इस सचाई पर आवरण डालना भी नहीं चाहता कि बौद्धिक ज्ञान और नैतिकता में गहरा सम्बन्ध नहीं है। नैतिकता का गहरा सम्बन्ध हृदय की पवित्रता से है।

जिसके हृदय में दूसरों के प्रति सहानुभूति करुणा मैत्री दूसरों के विकास के प्रति सद्भावना सहिष्णुता और संयम है वही पवित्र है। नैतिकता के विकास के लिए हमने उन्हीं मानदण्डों को मान्य किया है जो हृदय की पवित्रता में सहायक बनते हैं। हमने नैतिकता के तेरह मानदण्ड मान्य किये हैं और उन्हीं के आधार पर प्रस्तुत पाठ्यक्रम को विकसित किया है। वे मानदण्ड ये हैं

१ अभय मृदुता सत्य आर्जव करुणा धृति ।
अनासक्ति स्वावलम्ब स्वशासन सहिष्णुता ॥
२ कर्त्तव्यनिष्ठता व्यक्तिगतार्थस्य विसर्जनम् ।
प्रामाणिकत्वं यस्मिन् स्युः नीतिमान् उच्यते नरः ॥

जिस मनुष्य में—१ अभय, २ मृदुता—अहं का विसर्जन, ३ सत्य, ४ आर्जव—कपट का विसर्जन ५ करुणा ६ धैर्य, ७ अनासक्ति, ८ स्वावलम्बन ९ आत्मानुशासन १० सहिष्णुता, ११ कर्तव्यनिष्ठा, १२ व्यक्तिगत संग्रह का विसर्जन १३ प्रामाणिकता—ये गुण मिलते हैं, उसे नैतिक कहा जाता है।

बौद्धिक और तकनीकी शिक्षा के लिए इन मानवीय गुणों का विकास आवश्यक है। इस आवश्यकता की प्रत्यक्ष अनुभूति से प्रेरित होकर मैंने अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया था।

मानवीय गुणों के विकास की सर्वोत्तम उर्वरा विद्यार्थी-जीवन है। इसे परिलक्षित कर अणुव्रत विहार ने नैतिक शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित किया है। मुझे विश्वास है कि इस प्रयत्न से मानवीय गुणों के विकास को मुक्त आकाश मिलेगा।

१० जून, १९६९
चिक्कमगलूर

आचार्य तुलसी

अनुक्रम

कक्षा १०

कक्षा ११

कक्षा १०

श्रम की रोटी

भारत के पुराने ऋषि लोग कहते थे—'दो हाथ और दस अगुलिया पास मे हैं तो सब कुछ है और यदि ये नही है तो कुछ भी नही हे। हाथ हमारे पुरुषार्थ के प्रतीक हे। पुरुषार्थ हमारे स्वतत्र व्यक्तित्व का सरक्षक है।

हर आदमी अपने श्रम के बल पर ही अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकता है। जो आदमी आलसी हो जाते है वे श्रम से जी चुराते हैं। वे मुफ्त का खाना चाहते हैं। मुफ्त की रोटी बहुत भारी होती है। उसे पचाया नही जा सकता।

सस्कृत साहित्य का प्रसिद्ध सूक्त है

'उद्योगिन पुरुषसिहमुपैति लक्ष्मी'

जो उद्योगी होता है उस पुरुषसिह को लक्ष्मी वरण करती है। पौराणिक साहित्य मे ऐसी अनेक घटनाए मिलती है, जिनमे यह वर्णित है कि पुत्रो ने पिता की सम्पत्ति नही ली। उन्होने अपने श्रम से उपार्जन कर आजीविका चलाई। पिता द्वारा अर्जित सम्पत्ति का उप-भोग करना सामाजिक व्यवस्था है पर इससे अपने

पुरुषार्थ को प्रज्वलित करने की प्रेरणा कम हो जाती है। आत्म-निर्भरता मे जो सुखानुभूति होती है वह पर-निर्भरता में नही हो सकती। भारतीय साहित्य मे आत्म-निर्भरता का बहुत मूल्याकन किया गया है। एक सस्कृत कवि ने लिखा है.

"जो अपने गुणो से प्रसिद्ध होता है, वह उत्तम है। जो अपने पिता के नाम से प्रसिद्ध होता है, वह मध्यम है। जो अपनी ननिहाल से प्रसिद्ध होता है, वह अधम है। जो अपनी ससुराल से प्रसिद्ध होता है, वह अधमाधम है।"

दार्शनिक क्षेत्र मे जो आत्म-कर्त्तृत्व का सिद्धान्त है वही सामाजिक क्षेत्र मे श्रम का सिद्धान्त है। हमारे तत्त्ववेत्ताओ ने बार-बार इस सत्य को दोहराया था

> "जो सोता है, उसका भाग्य सो जाता है।
> जो बैठता है, उसका भाग्य बैठ जाता है।
> जो खडा होता है, उसका भाग्य खडा हो जाता है।
> जो चलता है, उसका भाग्य चलता है।
> इसलिए चलो, चलो और फिर चलो।"

इस दुनिया का निर्माण उन लोगो ने किया है, जिनका शरीर श्रम की बूँदो से गीला हुआ है। जो

लोग श्रम को नीचा और श्रमिक को छोटा मानते है, वे समाज की आधार-शिला पर प्रहार करते है। जब मूल्याकन की दृष्टि त्रुटिपूर्ण होती है तब आदमी आदमी ही नही रहता। इस प्रसग मे एक मार्मिक व्यग्य है

"एक सेठ था, बहुत समृद्ध और बडप्पन के गर्व से उन्मत्त। एक दिन सेठ के घर पर एक आदमी आया। उसने प्रणाम कर कहा—'सेठजी! घर मे शादी है इसलिए बर्तनो की जरूरत है। आप कृपा कर दे।' सेठ ने इधर-उधर दृष्टि दौडाकर कहा—'बैठो, अभी थोडी देर मे देता हूँ।' वह बैठ गया। आधा घटा बीत गया, फिर भी बर्तन नही मिले। उसने फिर प्रार्थना की तो सेठ ने फिर इधर-उधर देखा और कहा—'ठहरो, अभी यहा कोई आदमी नही है, उसके आने पर दे दूगा।" वह बेचारा फिर आधा घटा बैठा रहा। उस ने फिर कहा—'सेठ साहब! बहुत जरूरी काम छोडकर आया हूँ। कृपया अब जल्दी दीजिए।' सेठ ने कहा—मैं भी समझता हूँ, तुम्हारे घर मे शादी है, बहुत काम है और तुम्हे यहा रोकना उचित नही है। पर करूँ क्या, यहा कोई आदमी नही है, तब मै कैसे दू?' अब उस व्यक्ति से रहा नही गया। वह भावावेश मे बोल उठा, 'मैं तो आपको आदमी समझकर

ही आया था।' यह सुनकर सेठ बहुत लज्जित हुआ। वह तत्काल उठा और उसे वर्तन दे दिए।

जब श्रम के प्रति दृष्टिकोण गलत होता है, तब आदमी आदमी ही नही रहता। इससे अधिक अध.-पतन की और कल्पना क्या की जा सकती है?

श्रम मनुष्य की सहज प्रकृति है। अकर्मण्यता से केवल अर्थ की ही हानि नही होती. शारीरिक स्वास्थ्य की भी हानि होती है। जो आदमी शरीर से स्वस्थ, अर्थ से सम्पन्न और भावना से स्वतंत्र जीवन जीना चाहता है वह अपने पुरुषार्थ के स्रोत को किसी दूसरे स्रोत मे मिला देने मे गौरव का अनुभव नही करेगा।

विमर्श

१ श्रम का महत्त्व क्या है, स्पष्ट कीजिए?
२ लक्ष्मी उद्योगी पुरुष का ही वरण क्यो करती है?
३ इस पाठ मे दी गई लघुकथा से हमे क्या शिक्षा मिलती है?

राष्ट्रीय प्रेम : राष्ट्रीय प्रतिष्ठा

राष्ट्र जनता के सम्मान की इकाई होती है। राष्ट्र की प्रतिष्ठा सारी जनता की प्रतिष्ठा और राष्ट्र का अपमान सारी जनता का अपमान है। जिस व्यक्ति के मन मे अपने राष्ट्र के सम्मान की भावना होती है, वह सहज ही अनेक बुराइयो से बच जाता है।

राष्ट्रीय प्रेम दूसरे राष्ट्रो की घृणा पर आधारित नही होना चाहिए। उसका अपना मूल्य है। घृणा के आधार पर विकसित होने वाला प्रेम कट्टरता मे बदल जाता है। वह दृष्टिकोण को अयथार्थ बना देता है। कट्टरतावादी मनुष्य उस तथ्य को नही देखता जो घटित हो रहा है। वह उसे देखता है जिसे घटित करना उसे इष्ट है।

एक व्यक्ति ने एक सकल्प लिया।

"मैं वैसा कोई काम नही करूँगा जिससे राष्ट्र की प्रतिष्ठा कम हो।"

जिस राष्ट्र के नागरिक अप्रामाणिक होते है, उसकी प्रतिष्ठा कम हो जाती है। इसलिए उसने

अप्रामाणिकता छोड़ दी। वह व्यवहार का सच्चा हो गया।

जिस राष्ट्र के नागरिकों का चरित्र हीन होता है, उसकी प्रतिष्ठा कम हो जाती है, इसलिए वह चरित्र-वान् हो गया।

उस एक संकल्प के आधार पर उसका व्यक्तित्व सही दिशा में विकास करने लगा।

जिस व्यक्ति के मन मे राष्ट्रीय प्रेम होता है उसे अपने नागरिकों की शक्ति क्षीण करने मे राष्ट्र की शक्ति क्षीण करने का अनुभव होता है। इस अनुभूति के आधार पर वह खाद्यान्न मे मिलावट नही कर सकता। वह दूसरो के साथ विश्वासघात नही कर सकता।

जिसका मन राष्ट्रीय प्रेम से ओत-प्रोत होता है वह राष्ट्र के लिए बडे से बडे स्वार्थ का विसर्जन कर देता है। जिसका प्रेम छोटी सीमा मे बँधा होता है उसका स्वार्थ संकुचित होता है। जिसका प्रेम व्यापक होता है उसके स्वार्थ मे विसर्जन की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

पुराने जमाने की घटना है। सम्राट् बिबसार श्रैणिक मगध के शासन-सूत्र का सचालन कर रहे थे।

उन दिनो मगध की ख्याति दूर-दूर तक फैल रही थी। उसकी राजधानी राजगृह का वैभव दूर-दूर के लोगो को अपनी ओर खीच रहा था। सैकडो विदेशी व्यापारी वहा आते रहते थे। एक दिन नेपाल के चार व्यापारी वहा आए। प्रत्येक व्यापारी के पास चार-चार कवल थे। वे शहर मे घूमे। अनेक सम्पन्न लोगो के पास गए। कवल दिखाए। लोग कवल देखते ही झूम उठते। उन्हे खरीदने का मन हो जाता। किन्तु मूल्य सुनते ही सब पीछे सरक जाते। वे साधारण कवल नही थे। उनका नाम था रत्नकवल, अत्यन्त सुकुमार, स्निग्ध और कमनीय। वे गर्मी मे ठडे और सर्दी मे गर्म रहते थे। उनकी धुलाई अग्नि मे होती थी। प्रत्येक कवल का मूल्य था सवा लाख स्वर्णमुद्रा।

वे व्यापारी सम्राट् श्रेणिक के पास पहुचे। सम्राट् ने कवलो को बहुत पसद किया। पर मूल्य जान लेने पर लेने की इच्छा छोड दी। व्यापारी निराश हो गए। वे बडी आशा लेकर नेपाल से चले थे। उन्हे पूरा भरोसा था कि राजगृह मे उनका माल बिक जाएगा। यहा आने पर सारा उल्टा ही हुआ। एक कवल भी नही बिका।

चारो ओर से निराशा ही निराशा हाथ लगी, तब

वे नेपाल के लिये चल पडे। जाते समय वे राजमार्ग के बाए पार्श्व से गुजर रहे थे। मगध और राजगृह के प्रति उनके मन मे आक्रोश भर गया। वे परस्पर वार्ते करते हुए चल रहे थे। भद्रा अपने प्रासाद के वातायन मे बैठी थी। उसने उन व्यापारियो की बाते सुनी। उसे बहुत अप्रिय लगा। वह मगध और राजगृह के बारे मे कोई भी अप्रिय बात सुनना नही चाहती थी। उसके मन मे राष्ट्रीय प्रेम गहरा था। उसने अपने नौकर को भेज उन व्यापारियो को बुलाया। पहले तो वे इनकार करने लगे। अत मे सोचा 'चलो, यहा भी देख आए।' भद्रा ने कहा "तुम्हारी बातो से मुझे मालूम हुआ कि तुम मगध के बारे में गलत धारणा बनाकर जा रहे हो। कहो, तुम्हारे साथ क्या बीता?" व्यापारी बोले "बीता कुछ नही। हमारी आशा पर चोट लगी। इसलिए मन मे असतोष उभर आया। हम परस्पर वही बात करते हुए जा रहे थे।"

व्यापारियो को कोई आशा नही थी और वे मन ही मन सोच रहे थे कि जब सम्राट् ने तथा अन्य बड़े-बडे धनकुबेरो ने उनका माल नही खरीदा, फिर यह महिला क्या खरीदेगी? इसलिए सक्षेप में अपनी निराशा का कारण बता, वे जाने को तैयार

हो गए।

भद्रा ने अपने कोषाध्यक्ष को बुलाकर कहा —"यद्यपि कंबलों की जरूरत नहीं है, फिर भी राजगृह में आया हुआ कोई भी व्यापारी निराश होकर नहीं लौट सकता। इसलिए तुम जाओ और इनके रत्न-कंबल खरीद लो।"

व्यापारी स्तंभित रह गए। उन्होंने सोचा—'भद्रा ने रत्नकंबलों का मूल्य ठीक से समझा नहीं है।' उन्होंने फिर दोहराया कि प्रत्येक कंबल का मूल्य सवा लाख स्वर्णमुद्रा है। भद्रा ने उन्हें वहीं बिठा दिया। थोड़े समय में कोषाध्यक्ष बीस लाख स्वर्णमुद्राएँ ले आया। "राजगृह के बारे में गलत धारणा मत फैलाना"—यह कहते कहते भद्रा ने सारे कंबल खरीद लिए। व्यापारी स्वप्नलोक में विचरने लगे। उन्होंने सोचा—'जरूर हमसे कोई भूल हुई है। जहां एक महिला इतना साहस कर सकती है वहां पुरुषों का कहना ही क्या?' अब वे जहां भी गए वहां राजगृह की प्रतिष्ठा का सौरभ फैलाते गए।

विमर्श

१ राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के लिए कौन-कौन से संकल्प उपादेय हो सकते है ?

२ राष्ट्रीय प्रेम के लिए क्या स्वार्थ का विसर्जन अनिवार्य है और क्यो ?

३ भद्रा ने किस प्रकार से अपने राष्ट्र की प्रतिष्ठा की रक्षा की ?

दण्ड या हृदय-परिवर्तन

सामाजिक जीवन के आरम्भ की बात है। जन-सख्या बहुत कम थी और आवश्यकताए स्वल्प थी। उस समय अपराध नही के बराबर थे। कदाचित कोई छोटा-मोटा अपराध कर लेता तब उसे कुलपति के पास ले जाते। वह कहता—'हा! यह तूने क्या किया ?' यह 'हाकार' का दण्ड उसके लिए कारावास से अधिक भयकर दण्ड होता।

कुछ शताब्दियो के बाद 'हाकार' की मर्यादा समाप्त हो गई। फिर 'माकार' (पुन ऐसा मत करना) दण्ड से काम लिया जाने लगा। कुछ वर्षो बाद यह दण्ड भी असफल हो गया। जैसे-जैसे मनुष्य की लज्जाशीलता कम होती गई वैसे-वैसे दण्ड का भी विकास होता गया। कुछ समय धिक्कारने का दण्ड चला। उसके बाद बाधने, पीटने, अगछेद करने, जेल मे डालने व मारने का दण्ड चला। मनुष्य का सामाजिक विकास पूरा होते-होते उसकी दण्ड-सहिता बडे आकार की बन गई।

दण्ड के भय से अपराधो की मात्रा मे कमी होती है पर उससे अपराध समाप्त नही होते । मनुष्य का हृदय-परिवर्तन नही होता और दण्ड का भय होता है तब अपराध छिपकर किए जाते है । हृदय-परिवर्तन सत्-सस्कारो के प्रशिक्षण से हो सकता है । उसके हो जाने पर आदमी कही भी अपराध नही करता । कुछ लोग दण्ड द्वारा सुधार चाहते है पर अंतर की ज्योति जले बिना वह कब सम्भव है !

एक बार एक सास ने कहा "बहूरानी ! ध्यान रखना घर मे अधेरा न घुस जाए । मै अभी बाहर जा रही हू ।" सूर्य अस्त होनेको था। बहू ने सावधानी बरती । सारी खिडकिया बन्द कर डाली । लाठी लेकर दरवाजे पर बैठ गई । अधेरा यो कब मानने वाला था ! वह तो आ ही घुसा ।

पहर रात बीती और सास आयी । उसने कहा "घर मे अधेरा ही अंधेरा है ।" बहू ने आँसू बहाते हुए कहा—"सास जी ! मुझे क्षमा करना, यह अधेरा बहुत ही ढीठ है । इसे पीटते-पीटते कई लाठिया टूट गई । मेरे हाथ छिल गए, लहू-लुहान हो गए । सारी खिडकिया और दरवाजे बन्द कर डाले तो भी यह आ

घुसा। मैं इसे पीटते पीटते हार गई तो भी यह नहीं गया।" बहू की भोली बातों पर सास हँस पड़ी। उसने दीपक जलाते हुए कहा—"बहुरानी! अंधेरा पीटने से नहीं जाता, वह जाता है ज्योति से।" घर के साथ-साथ बहू का हृदय भी जगमगा उठा।

जिसकी आंतरिक दृष्टि जाग जाती है वह दिन में या रात में, अकेले में या परिषद् में कहीं भी अपराध नहीं करता।

पुराने जमाने की घटना है। एक उपाध्याय के पास तीन छात्र पढ़ रहे थे। एक उपाध्याय का पुत्र था, दूसरा था राजकुमार वसु और तीसरा था नारद। एक दिन उस विद्यालय के समीप से दो साधु जा रहे थे। एक था गुरु और एक था शिष्य। उस शिष्य ने तीनों छात्रों को पढ़ते देखा और अपने गुरु से पूछा—"भगवन्! मेरे मन में एक जिज्ञासा उत्पन्न हुई है। मैं उसका समाधान चाहता हूं।" गुरु ने कहा—'क्या जिज्ञासा है?" शिष्य बोला—"भगवन्! मैं जानना चाहता हूं कि इन तीनों विद्यार्थियों में कौन स्वर्गगामी है और कौन नरकगामी?" गुरु ने कहा—"इसे जानकर क्या करोगे?" शिष्य ने कहा—"मुझे अवश्य जानना है। कृपया आप मेरा समाधान कीजिये।" गुरु बोले

"इनमे दो नरकगामी है और एक स्वर्गगामी ।"

उपाध्याय ने यह बात सुनी। उन्हे बडा कष्ट हुआ। अपने अध्यापन पर उन्हे बहुत असतोप हुआ। वह यह जानने को आतुर हो गए कि स्वर्गगामी कौन है और नरकगामी कौन ? उपाध्याय ने परीक्षा का मार्ग खोज लिया। जिसकी आतरिक दृष्टि जाग गई है वह स्वर्ग-गामी है और जो बहिर्दृष्टि से काम लेते है वे नरक-गामी है।

उपाध्याय घर मे गए। आटे के तीन मुर्गे बनाए। तीनो छात्रो को बुलाकर उनके हाथ में एक-एक मुर्गा दे दिया। तीनो से कहा "तुम लोग अलग-अलग जाओ और जहा कोई भी न देखे वहा जाकर इनकी गर्दन तोड इन्हे वापस ले आओ।" तीनो ने उपाध्याय का आदेश शिरोधार्य किया। वे वहां से जगल की ओर चले। आगे जा तीनो तीन दिशाओ में हो गए। साझ होते-होते तीनो उपाध्याय के पास वापस चले आए। उपाध्याय उनकी प्रतीक्षा में थे। तीनो ने अपने-अपने मुर्गे उपाध्याय के सामने रख दिए। उपाध्याय ने अपने पुत्र से पूछा "तूने मेरे आदेश का पालन किया है ?"

"हा, गुरुदेव ! किया है।"

"इसका प्रमाण ?"

"प्रमाण यह है कि मुर्गे की गरदन टूटी हुई है।"

"किसी ने देखा तो नही ?"

"वृक्षो के झुरमुट मे घुसकर मैंने इसकी गरदन तोडी है, वहा देखने वाला कोई नही था।"

उपाध्याय ने राजकुमार वसु से पूछा—

"तूने मेरे आदेश का पालन किया है ?"

"हा, गुरुदेव! किया है।"

"इसका साक्ष्य ?"

"साक्ष्य यही है कि मुर्गे की गदन टूटी हुई है।"

"कोई देख तो नही रहा था ?"

"नही, गुरुदेव! मैंने एक अधेरी गुफा मे जाकर इसकी गदन तोडी है। वहा कोई नही देख सकता था।"

उपाध्याय ने नारद से कहा—"लगता है तूने मेरे आदेश का पालन नही किया ?"

"किया है, गुरुदेव!" नारद सहसा बोल उठा।

"इसका प्रमाण ?"

'गुरुदेव! प्रमाण की लम्बी कहानी है। मैं वृक्षो के झुरमुट मे गया। मुझे लगा यहा कोई-न-कोई पछी देख सकता है। फिर मैं पवत की कदराओ मे

गया । मुझे लगा यहां कोई चींटी देख सकती है । फिर मैं घनघोर अंधकार वाली गुफा में गया । वहां जाकर जैसे ही मैंने मुर्गे की गर्दन की ओर हाथ बढ़ाया वैसे ही मेरी अन्तरात्मा बोल उठी, "यहां दूसरा कोई नहीं देखता पर भगवान सब जगह देखता है । अब मेरे लिए ऐसा एकांत खोजना सम्भव नहीं रहा, जहां दूसरा कोई न देखे । मैं तत्काल यहां लौट आया ।"

उपाध्याय अपने आसन से उठे । वे नारद को थपथपाते हुए बोले "तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है, क्योंकि तुम्हारी अन्तरात्मा जाग चुकी है ।"

दोनों छात्रों से कहा "तुम्हारा भविष्य मुझे धुंधला दिखाई देता है, क्योंकि तुम्हारी अन्तरात्मा सोयी पड़ी है ।"

अपराध की प्रवृत्ति का मूल है अन्तरात्मा की सुषुप्ति । हृदय-परिवर्तन का अर्थ है अन्तरात्मा का जाग जाना । जिसका हृदय परिवर्तित हो जाता है वह बुराई इसलिए नहीं कर सकता कि वह उसमें खतरा ही खतरा देखता है ।

विमश

१ दण्ड अथवा हृदय-परिवतन म मे कौन मा अधिक अभिप्रेत है और क्यो ?

२ प्रस्तुत पाठ म दी गई कथाओ मे आपको क्या शिक्षा मिलती है ?

३ आन्तरिक दृष्टि के जागरण से आप क्या अथ लेते हैं ?

मिताहार और मितवचन

मिताहार

भोजन हमारे जीवन का आधार है। जो आधार देता है वह संहार भी कर सकता है। मात्रा से अधिक किया गया भोजन जीवन का संहार कर डालता है। इसलिए आयुर्वेद के आचार्यों ने मिताहार का उपदेश दिया है।

एक बार महर्षि चरक कौवे का रूप धारण कर नदी के तट पर गए। वहां बहुत लोग स्नान कर रहे थे। कौआ मनुष्य की भाषा मे बोला 'कोऽरुक् ? कोऽरुक् ? कोऽरुक् ?' स्वस्थ कौन है ? स्वस्थ कौन है? स्वस्थ कौन है ? एक व्यक्ति बोला 'जो च्यवनप्राश खाता है, वह स्वस्थ है।' दूसरा बोला 'जो मकरध्वज लेता है, वह स्वस्थ है।' तीसरा बोला 'जो भोजन के पश्चात् द्राक्षासव पीता है, वह स्वस्थ है।' इस प्रकार दसो मनुष्यो ने दसो औषधियो के नाम गिना दिए। यह सुन महर्षि चरक असमंजस मे पड गये। उन्होने सोचा 'मैने आयुर्वेद का शास्त्र इसलिये नही लिखा था कि मनुष्य औषधि के बल पर स्वस्थ रहे। मैने वह इसलिये

लिखा था कि अस्वस्थ हो जाने पर वह औषधि से रोग का निवारण कर सके। मेरे शास्त्र का दुरुपयोग हुआ है। लोगों ने अपने पेट को ही दवाखाना बना लिया है।' उनका मन असतोष से भर गया।

कौआ और आगे बढा। दूसरे तट पर जाकर फिर उसने तीन बार कहा—'कोऽरुक् ? कोऽरुक् ? कोऽरुक् ?' वहा वाग्भट्ट स्नान कर रहा था। उसने जैसे ही सुना—'कोऽरुक ?' वह बोल उठा—'हित-भुक्'—जो हितकर भोजन करता है। कौवे ने दूसरी बार फिर कहा—'कोऽरुक ?' वाग्भट्ट ने कहा—'मित-भुक्'—जो मित भोजन करता है। तीसरी बार फिर कौआ बोला—'कोऽरुक् ?' वाग्भट्ट ने उत्तर दिया—'ऋतभुक्'—जो सचाई से कमाया हुआ खाता है। चरक ने सुख की सास ली और वे अपने स्थान लौट गए।

मित-भोजन से न केवल स्वास्थ्य ही अच्छा रहता है, किन्तु उससे खाद्य-समस्या भी सुलझती है। अधिक मात्रा में खाने वाले अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ते हैं और खाद्य-समस्या को भी उलझाते हैं।

मितवचन

हमारे सामाजिक सम्पर्क का माध्यम वचन है। उसके द्वारा हम अपने भाव दूसरों तक पहुचाते हैं और

दूसरों के भावों को पकडते है। हम हित, मित, प्रिय और सत्य बोलते है, उससे सामाजिक उल्लास बढ़ता है।

जो आदमी अधिक बोलता है और काम कम करता है उसे भारतीय साहित्य मे ढपोरशख कहा गया है।

एक यात्री अपने देश को जा रहा था। बीच मे एक गाव में ठहरा। उसके पास दक्षिणावर्त शंख था। शाम को उसने शख की पूजा की। फिर प्रार्थना के स्वर मे बोला 'मै पाच रुपये पाकर बडा अनुगृहीत होऊगा।' दूसरे ही क्षण उसके हाथ मे पाच रुपये थे। घर का मालिक आश्चर्यचकित रह गया। वह उस शख को हथियाने के लिये ललचा गया।

यात्री रात को सो रहा था। थका हुआ था। सन्देह कोई था नही। कोई भय भी नही था। आधी रात की बेला थी। नीद गहरी हो चली थी। घर का मालिक उठा। धीरे से उसके झोले मे हाथ डाला और शख को निकाल लिया।

पौ फटते ही यात्री मधुर विदा ले चल पडा। कोसो तक चला गया। सूर्य उगा। शौच-कार्य से निपटकर वह पूजा करने बैठा। कपडा उतारा तो

उसका दिल ही उतर गया। उसके हाथ मे रह गया कोरा शख। वह क्या पूजा लेता और क्या उसे मुँह-मागा देता!

कुछ दिन बीते। वही यात्री, वही घर और वही पूजा का समय। यात्री ने उसी तरह विनम्र स्वर मे कहा—'मुझे दो रुपये की आवश्यकता है।' शख बोला—'लो चार।' चार मागे तो बोला—'लो आठ।' घर का मालिक कान लगाये बैठा था। मुह मे पानी भर आया। ब्राह्मण सो गया। पर आज नीद आँखो मे नही थी। घर का मालिक उठा, हौले से जा शख को बदल दिया। उसके जाते ही ब्राह्मण उठा। दक्षिणावर्त को देख हर्ष से उछल पडा। उसी समय वहा से चल पडा।

प्रभात हुआ। घर का मालिक उठा। पूजा की और पाच रुपये मागे। शख बोला—'लो दस।' दस मागे तो बोला—'लो बीस।' बीस के चालीस और चालीस के अस्सी हो गए। पर अब रुपये कहा थे! कोरी और वाचालता का विचित्र योग देख उसने कहा—'तुम केवल बोलना जानते हो या कुछ देना भी?'

'महाशय! देना दक्षिणावर्त का काम है। ढपोर-शख का काम है केवल बोलना।'

ठोस काम वही कर सकता है जो कम बोलता है, अधिक करता है। जहां आदमी मुखर होता है और काम मौन, वहां विकास ठप्प हो जाता है। जहां काम मुखर होता है और व्यक्ति मौन, वहां विकास का द्वार खुल जाता है।

विमर्श

१. स्वास्थ्य के लिए कौन-कौन-से नियम अनिवार्य है और क्यों ?
२. मिताहार और मितवचन को श्रेयस्कर क्यों माना जाता है ?
३. इस पाठ में हमे क्या शिक्षा मिलती है ?

मानसिक स्वास्थ्य

गरुड ने काकभुशुंडि से कहा—"मैं मानसिक रोगो के बारे मे जानना चाहता हू।" इस जिज्ञासा के उत्तर मे काकभुशुडि ने बतलाया—"गरुड! सब रोगो का मूल मोह है। उससे अनेक पीडाए उत्पन्न होती हैं।"

मनुष्य के शरीर मे तीन दोष होते है—वात, कफ और पित्त। मानसिक जगत् मे काम वात, लोभ कफ और क्रोध पित्त ह। जब ये तीनो कुपित होते है तब सन्निपात का रोग प्रकट हो जाता है। ममता दाद है। ईर्ष्या खुजली है। हर्ष और विषाद गठियावात ह। दूसरो का सुख देखकर जलना क्षयरोग है। मन की कुटिलता और दुष्टता कोढ है। दभ और मान नहरुआ हे। तृष्णा जलोदर हे। मात्सर्य और अविवेक ज्वर ह।

मानसिक आवेगो और उप-आवेगो के अनेक प्रकार है। आवेग चार ह—क्रोध, मान, माया और लोभ। ये अपनी अपनी मात्रा के अनुसार मानस को प्रभावित करते ह।

भय, शोक, घृणा, ईर्ष्या और कामवासना ये उप-आवेग है। ये व्यक्ति के जीवन को बहुत प्रभावित करते है। क्रोध आदि की शक्ति तीव्र होती है, इसलिए वे आवेग है। वे व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक स्थिति को प्रभावित करने के अतिरिक्त उसके आन्तरिक गुणो सम्यक् दृष्टिकोण और आत्म-नियन्त्रण को भी प्रभावित करते है। भय आदि उप-आवेग व्यक्ति के आन्तरिक गुणो को उतना प्रत्यक्षत. प्रभावित नही करते जितना शारीरिक और मानसिक स्थिति को करते है। उनकी शक्ति अपेक्षाकृत कम होती है, इस-लिए वे उप-आवेग है। आन्तरिक गुणो मे होने वाला प्रभाव बहुत सूक्ष्म होता है अत वह सहजभाव से पहचाना नही जाता। आवेगो और उप-आवेगो का शरीर और मन पर जो प्रभाव होता है, उसकी जान-कारी हमे चिकित्सा-शास्त्र की पुरानी और नयी सभी शाखाओ के साहित्य द्वारा प्राप्त होती है। योगशास्त्र में भी इसकी चर्चा मिलती है। कुछेक उदाहरण इस प्रकार है

मानसिक चिन्ता, निराशा, भय, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि मानसिक आवेगो से हृदय रोग उत्पन्न होता है। भय, चिन्ता, क्रोध,

मद, मोह, मात्सर्य आदि मानसिक आवेगों मे पुरुष का वीर्य पतला हो जाता है और स्त्री के रजो-विकार का रोग उत्पन्न हो जाता है। मानसिक चिन्ता, अशान्ति, उद्विग्नता और क्षोभ के कारण क्षयरोग उत्पन्न होता है। ईर्ष्या और द्वेष यकृत और तिल्ली को प्रभावित करते है। क्रोध और घृणा से गुर्दे विकृत होते है तथा रक्त विषैला बनता है। चिन्ता और उदासीनता से फेफड़े दुर्बल होते है, मस्तिष्क विकृत और रक्त दूषित होता है। विषय-वासना की प्रबलता से वीर्य-विकार-प्रमेह आदि मनोविकारो की दशा मे खाये जाने वाले अन्न का समुचित परिपाक नही होता।

इनकी उत्पत्ति का कारण यह है कि मानसिक आवेग शरीर की रोग-प्रतिरोधक शक्ति को नष्ट कर डालते हैं। हमारे शरीर मे दो पाचक रस रहते है—लवणाम्ल (हाइड्रोक्लोरिक) और पेप्सीन।

द्वेष, ईर्ष्या, भय, शोक, क्लेश, निन्दा, घृणा आदि मानसिक आवेगो से प्रभावित अवस्था मे पाचक रस अल्प मात्रा मे बनते है, इसलिए शरीर और मन शक्तिहीन हो जाते है।

चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, लोभ आदि से अरुचि और अजीर्ण रोग होता है।

चिन्ता आदि से आमाशयिक स्राव कम होता है और क्षुधा नष्ट हो जाती है। हमारा जीवन प्रवृत्ति-बहुल है। जहा प्रवृत्ति होती है वहा वेग होता है। वह दो प्रकार का होता है शारीरिक और मानसिक। शारीरिक वेग तेरह प्रकार के है—वात (ऊर्ध्ववात, अधोवात), मल, मूत्र, छीक, प्यास, भूख, निद्रा, काम, श्रमजनितश्वास, जमुहाई, अश्रु, वमन और शुक्र। इनका वेग धारण करने से रोग उत्पन्न होते है इसलिए इनका निषेध है।

शारीरिक वेगो को धारण करने से रोग उत्पन्न होते है और मानसिक वेगो को धारण न करने से रोग उत्पन्न होते है। इसलिए उनके निरोध का विधान है। कहा है इस लोक मे और परलोक मे हित चाहने वाला व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य, राग आदि वेगो का निरोध करे।

एलोपैथी में रोग के प्रधान हेतु कीटाणु है। होम्योपैथी का सिद्धान्त इससे भिन्न है। इसके अनुसार उसका मूल मन से भी आगे है। आयुर्वेद मे रोग चार प्रकार के माने गये है.

आगन्तुक, शारीरिक, मानसिक और स्वाभाविक। आगन्तुक रोगो का हेतु बाह्य उपकरण-शस्त्र आदि

ह। शारीरिक रोग हीन, मिथ्या और अतिमात्रा मे प्रयुक्त अन्न-पान के कारण कुपित (या विषम) हुए वात, पित्त, कफ, रक्त या इनके मिश्रण से उत्पन्न होते ह। मानसिक रोग क्रोध, शोक, भय, हर्ष, विषाद, ईर्ष्या, असूया, दैन्य, मात्सर्य, काम, लोभ आदि से तथा इच्छा और द्वेष के अनेक भेदो से उत्पन्न होते है। स्वाभाविक रोग भूख, प्यास, बुढापा, मृत्यु, निद्रा आदि ह।

रोग का एक हेतु कर्म भी माना जाता है। कर्मज रोग किसी बाह्य हेतु के बिना भी प्रकट हो जाते हे। कर्मज रोग हमारे लिए परोक्ष हे। स्वाभाविक रोग जीवन का सहज क्रम है। आगन्तुक रोग की जो व्याख्या की जाती ह वह आकस्मिक घटना है। शेप रहते ह—शारीरिक और मानसिक। बाहर से शरीर मे आकर रोग उत्पन्न करने वाले अणुओ या कीटाणुओ से जो रोग उत्पन्न होते ह वे भी आगन्तुक रोग माने जाते ह।

शारीरिक, मानसिक और आगन्तुक—इन तीनो प्रकार के रोगो मे मुख्य रोग मानसिक हे। तात्पर्य की भाषा मे कहा जा सकता है कि रोग के मुख्य हेतु आन्तरिक दोष—क्रोध आदि है।

मन की स्थिर स्थिति

ध्यानावस्था में बाहरी प्रभाव बहुत कम होता है। रोग-प्रतिरोधक-शक्ति तीव्र होती है। मन वशवर्ती होता है तो वात, पित्त और कफ की अतिरिक्त विषमता नही होती। मन पवित्र होता है तो क्रोध आदि जनित रोग उत्पन्न नही होते। उनकी अस्थिरता, उच्छृखलता और अपवित्रता मे तीनो प्रकार के रोग होते है। इसलिए आरोग्य की पृष्ठभूमि मे स्वास्थ्य सहज अपेक्षित है। स्वास्थ्य यानी स्वस्थिति आत्मस्थता। अध्यात्म से आत्मा का उदय होता है किन्तु साथ-साथ उससे शरीरोदय भी होता है।

विमर्श

१. मानसिक स्वास्थ्य के लिए कौन-कौन-सी बाते अपेक्षित है ?
२ मानसिक आवेग और उप-आवेग कौन-कौन-से है ? उन्हे अनुपादेय क्यो माना गया है ?
३. मन की स्थिर स्थिति की क्या परिभाषा है ?

लोकतंत्रीय चरित्र के चार स्तम्भ

लोकतन्त्र की सफलता उसके नागरिको के चरित्र पर निर्भर है। लोकतन्त्रीय चरित्र के चार मुख्य स्तम्भ है

१ सामुदायिक व्यवस्था का अपने पर प्रयोग करना।

२ नेतृत्व को स्वीकार करने की मनोवृत्ति।

३ स्वार्थ-विघटक स्वार्थ का विसर्जन।

४ मुख्य के लिए गौण का बलिदान करने की क्षमता।

इन्ही स्तम्भो के बल पर लोकतन्त्र का विशाल प्रासाद खडा होता है।

"गर्मी के दिन थे। तालाब सूखा पडा था। राजा के मन मे उसे दूध से भरा हुआ देखने की इच्छा हुई। मन्त्री से परामर्श किया। इतना दूध कहा से आयेगा?

मन्त्री चिन्तामग्न हो गया। राजा को कोई चिन्ता नही थी। उसका सामुदायिकता मे विश्वास था। राजा की इच्छा के अनुसार मन्त्री ने राजाज्ञा की घोषणा

करा दी "प्रत्येक नागरिक आज शाम को एक-एक लोटा दूध इस तालाब मे डाले ।"

प्रभात हुआ । राजा दूध भरा तालाब देखने की आकांक्षा लिए उठा । मत्री को निमन्त्रित किया । आमोद की मुद्रा में तालाब पर आया । सबने देखा तालाब लबालब भरा हुआ है, दूध से नही पर पानी से । राजा का स्वप्न टूट गया ।

एक ने सोचा इतने बडे तालाब मे यदि मै एक लोटा पानी डाल आऊ तो क्या पता चलेगा । दूसरे और तीसरे ने भी यही सोचा । प्रवाह ऐसा ही बह गया । सबने यही सोच लिया और तालाब जल से भर गया । राजा अब तक पानी मे दूध देख रहा था पर आज उसे दूध मे पानी दीखने लगा ।

एक समय की बात है, राजा को सैन्य बढाने की आवश्यकता हुई । मत्री को आदेश मिला । सयोग की बात एक सैनिक टोली वहा आ पहुँची । मत्री ने परीक्षा की योजना की । सैनिक विशाल कक्ष मे प्रविष्ट हुए । वे थे पॉच सौ और खाट थी एक । उस पर सोने के लिए विवाद होने लगा । सबने अपनी-अपनी गुण-गाथाए गायी, अपना-अपना बखान किया और उस पर

सोने के लिए अपना-अपना अधिकार बताया। विवाद पूरा नही हुआ, रात पूरी हो गई। खाट के लिए सब लडे, किन्तु खाट किसी के काम नही आयी। सूर्योदय के साथ-साथ आदेश मिला—"आप लोग चले जाइए। हमारी सेना का द्वार उनके लिए बद है, जो एक के लिए अनेक होते हैं।"

थोडे दिन बाद फिर एक दूसरी टुकडी आयी। उसमे भी पूरे पॉच सौ सैनिक थे। उन्हे भी वही कक्ष मिला और वही खाट। आग्रह होने लगा, मनुहारो का तांता लग गया। हरेक ने दूसरे को बडा बताया, पर उस पर सोने के लिए कोई तैयार नही हुआ। आखिर समझौता हुआ। खाट को प्रधान माना और सब के सब उसकी ओर सिरहाना कर सो गए। सूर्योदय के साथ-साथ नियुक्ति का आदेश आया। उसमे लिखा था—"हमारी सेना का द्वार उनके लिए सदा खुला है जो एक के लिए एक होते है।"

चार पुजारी एक मन्दिर की पूजा कर रहे थे। एक दिन कोई भक्त मदिर मे आया। वह जाने लगा, तब उसने पुजारियो को एक गाय दक्षिणा मे दी। गाय एक, पुजारी चार। उसका विभाग कैसे करे? यह समस्या उनके सामने उपस्थित हो गई। काफी

विचार के बाद वे एक निर्णय पर पहुँच गए। उस निर्णय के अनुसार एक-एक व्यक्ति बारी-बारी से गाय को दोहने लगा। पहले पुजारी ने गाय को दोह लिया पर उसे खाने को घास नही दी। उसने सोचा "गाय चारो की है, मै अकेला घास क्यो खिलाऊ? कल जिसकी बारी होगी वह घास खिलाएगा ही। एक दिन घास नही खायेगी तो क्या फर्क पडेगा!"

दूसरे दिन गाय दूसरे पुजारी के घर चली गई। उसने भी दूध दोह लिया। घास खिलाने का समय आया तब उसने भी वही सोचा जो पहले ने सोचा था। तीसरे और चौथे पुजारी ने भी दूध दुहा पर घास नही खिलायी। थोडे ही दिनो में गाय कमजोर हो गई। दूध सूख गया। कुछ दिनो बाद वह मर गई।

पुजारियो की स्वार्थी मनोवृत्ति से गाय की ही हत्या नही हुई, बल्कि उनके स्वार्थ की भी हत्या हो गई। उनके थोडे स्वार्थ के विसर्जन से अधिक स्वार्थ सधता। स्वार्थ-सिद्धि का रहस्य है स्वार्थ का विसर्जन। मै एक प्रत्यक्ष घटना प्रस्तुत कर रहा हू।

एक व्यापारी है निपुण, विनम्र और अनुशासित। उसकी दृष्टि केवल वर्तमान पर टिकी नही है। वह अतीत से सीखता है और परिणाम को समझता है।

उसका मानना है कि वह स्वार्थ से दूर रहता है, इसलिए उसका स्वार्थ अधिक सधता है। कुछ लोग सोचते है, स्वार्थपरता से स्वार्थ अधिक सधता है। पर वह इस बात को भ्रान्त मानता है। एक उच्च अधिकारी उसका मित्र था। उसकी मृत्यु हो गई। वह उस अधिकारी की पत्नी के पास पहुँचा। वह अपने पति के मित्र को देख सिसक सिसक रोने लगी। व्यापारी ने आश्वासन की भाषा मे कहा—"कहिए, इस समय मैं आपका क्या सहयोग कर सकता हूँ ?" उसने कहा—"मुझे अपने घर पर पहुँचा दीजिए। यहाँ एक क्षण भी मेरा मन नही लग रहा है।" व्यापारी ने कहा—"कल व्यवस्था हो जाएगी। आप पहले चली जाए। सामान पीछे से भिजवा दूगा।" यह सहानुभूति का स्वर इतना हार्दिक और इतना प्रबल था कि संवेदना प्रकट करने के लिए आए हुए दसो अधिकारी अनायास उसके मित्र बन गए। स्वार्थ सधने की संभावना न रहने पर भी जो व्यक्ति इतना सम्बन्ध निभाता है, वह सचमुच महान् है। उसकी महानता मे सबके मन विलीन हो गए। स्वार्थ का विसर्जन स्वार्थ-सिद्धि का सरल मार्ग है। पर स्वार्थ-लिप्सु अब भी इस रहस्य को नही समझ पा रहे है।

पुराने जमाने की बात है। एक था राजा और चार थी उसकी रानियां। एक बार वह राजा दूसरे देश मे गया। लम्बे समय तक वहां रहा। रानियां प्रतीक्षा मे अधीर हो उठी। पत्र-व्यवहार चल ही रहा था। समाचार आया महाराज अब आने ही वाले है। रानियो ने बधाई में पत्र लिखे और अपनी-अपनी मॉग भी लिखी। राजा आया। राजधानी हर्ष से झूम उठी। रनिवास प्रफुल्ल हो गया। राजा अन्त.पुर में आया। बातचीत चली। विरह प्रमोद मे लीन हो गया। अत में राजा ने पुरस्कार बॉटा। बडी रानी को मोतियो का हार मिला। दूसरी को नेउर और तीसरी को कर्णफूल। चौथी को वह सब मिला जो राजा अपने साथ लाया था। सोयी ईर्ष्या जाग उठी। तीनो रानिया एक स्वर मे बोल उठी "है! न्याय के आसन पर यह अन्याय की परछाई।" राजा मुसकरा दिया। रानियो ने प्रतिकार की भाषा में कहा "पुरुष की छल-भरी मुसकान ही स्त्रियो मे ईर्ष्या उत्पन्न करती है।" राजा ने फिर मुसकान बिखेरी। रानियां जल-भुन उठी। दोपहरी-से सफेद अन्याय को वे सह न सकी। उनका चेहरा तमतमा उठा। राजा ने देखा अब बॉध टूट चुका है। "इसका न्याय सभा मे होगा" यह

कहते कहते राजा खड़ा हो गया।

कई महीनों बाद राजा को सभा में देख सभासद् हर्षोत्फुल्ल थे। शिष्टाचार सम्पन्न हुआ। राजा न्याय के आसन पर जा बैठा। अपना घरेलू झगड़ा सभा के सामने रखा। लोग आश्चर्यचकित थे। मन में नाना प्रकार की प्रतिक्रियाएं हो रही थीं। तीनों रानियां अपनी सफलता पर फूल रही थीं। वातावरण शान्त था। मौन और केवल मौन। सांस भी भीतर रुक रहे थे। सभी सभासद् चिन्तन की मुद्रा में थे। राजा का संकेत पा सचिव खड़ा हुआ। नीरवता को भंग करते हुए उसने बड़ी रानी का पत्र पढ़ा। उसमें था—"आप आएं तब मेरे लिए मोतियों का हार लेते आएं।" दूसरा पत्र पढ़ा। उसमें था—"आप आएं तब मेरे लिए नेउर लेते आएं।" तीसरे पत्र में था—"बड़ा अनुग्रह होगा, यदि आप मेरे लिए कर्णफूल लाएं तो।" अब चौथे पत्र की बारी आयी। उसमें था—"मेरे लिए आप ही सब कुछ हैं। मैं और कुछ नहीं चाहती, केवल आपको चाहती हूं। मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि अब आप तुरन्त आने की कृपा करें।"

शेष सब बोल रहे थे, केवल तीन रानियां मौन थीं।

विमर्श

१. लोकतन्त्रीय चरित्र के चार स्तम्भ कौन-कौन-से है ?
२ प्रस्तुत पाठ में दी गई लघु-कथाओ से हमे क्या शिक्षा प्राप्त होती है ?

प्रामाणिकता

मैंने देखा एक दुकान पर बहुत भीड थी। जैसे ही आठ बजे दुकान बद हो गई, कुछ लोग माल खरीदे बिना ही रह गए। उनके चेहरो पर खिन्नता झलक रही थी। मैंने एक आदमी से पूछा—'तुम खिन्न दीख रहे हो ?' वह बोला—'हम लोग चार मील से आए थे। आने मे कुछ देर हो गई। दुकान पर पहले से ही बहुत भीड थी। माल खरीदने का क्रम ही नही आ सका। इसलिए मन मे थोडी खिन्नता आ रही है। ऐसा लग रहा है कि आज का श्रम खाली गया।' मैंने पूछा—'तुम्हे जो माल खरीदना था वह दूसरी दुकानो मे नही है ?' उसने कहा—'बहुत है।' 'फिर तुम उसी दुकान पर क्यो खडे रहे ?' मैंने पूछा। वह बोला—'उस दुकान मे हमारा विश्वास है। वहा मिलावट नही होती। तोल माप मे कमी नही होती। सबके लिए एक जैसा भाव है। बच्चा भी आकर माल खरीदे तो कोई धोखा नही होता। उस दुकान का मालिक अनुचित फायदा नही उठाता। इसलिए हम लोग उसी दुकान से माल खरीदते है।'

मैने कहा 'आज तुम्हे विश्वास के लिए काफी कीमत चुकानी पडी।' उसने कहा 'कोई बात नही, कल फिर आएगे और माल खरीदकर ले जाएगे।' मै देख रहा था उसका हर शब्द प्रामाणिकता के प्रति अपनी आस्था प्रकट कर रहा था।

दिल्ली प्रशासन मे एक तहसीलदार थे। वे समय-समय पर धर्म-चर्चा के लिए आया करते थे। एक दिन वे बहुत देर से आए। मैने पूछा- 'आज इतना विलब कैसे हुआ ?' उन्होने कहा 'बस नही मिली, पैदल चलकर आया हूँ, इसलिए देर हो गई।' मैने पूछा 'तुम्हारे जीप है, फिर बस की क्या जरूरत थी ?'' उन्होने कहा ''जीप सरकारी है, उसका उपयोग मै तभी करता हूँ जब सरकारी काम के लिए जाता हूँ। यह मेरा व्यक्तिगत काम है। इसके लिए मै उसका उपयोग कैसे कर सकता हूँ ?' उनके उत्तर ने मेरे मन को इतना आलोडित किया कि आज भी उसकी स्मृति से मन आलोडित हो जाता है।

एक व्यापारी यात्रा के लिए जा रहा था। उसके पास काफी सामान था। वह स्टेशन से एक तागे मे बैठकर धर्मशाला मे गया। तागेवाला उसका सामान उतारकर वापस चला गया। उसने स्टेशन पर जाने

के बाद देखा कि उसके तागे मे व्यापारी का एक सदूक रह गया है। वह वापस धमशाला मे आया। उसने उस व्यापारी के बारे मे पूछताछ की तो पता चला कि वह उस स्थान को छोडकर किसी दूसरे स्थान मे चला गया। तागेवाला धमशालाओ और होटलो मे उसे खोजता खोजता हैरान हो गया। आखिर शाम के समय एक होटल मे वह व्यापारी मिल गया। उसने व्यापारी के पास जाकर वह सदूक दे दिया। व्यापारी उसकी ईमानदारी देख आश्चर्यचकित रह गया।

प्रामाणिकता का समृद्धि के साथ गठबधन नही ह और गरीबी से विरोध नही है। जिसके हृदय मे दूसरो के प्रति सहानुभूति नही होती, केवल धनार्जन का दृष्टिकोण होता है, वह समृद्ध होकर भी अप्रामाणिकता से बच नही पाता। जिसके हृदय मे दूसरो के प्रति सहानुभूति होती है, केवल धनार्जन का ही दृष्टिकोण नहीं होता, वह गरीब होकर भी अप्रामाणिक नही होता।

एक अणुव्रती प्रामाणिकता के प्रति बहुत आस्थावान था। वह कभी मिलावट नही करता था। एक बार उसने माल खरीदा। उसमे मिलावट किया

हुआ माल आ गया। उसे उसका पता चल गया। वह असमजस मे पड गया। एक ओर उसके सामने प्रश्न था दस हजार रुपयो का और दूसरी ओर प्रश्न था प्रामाणिकता का। उसने दोनो स्थितियो के लाभ-अलाभ पर विचार किया। आखिर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि एक ओर केवल दस हजार रुपयो की हानि होती है और दूसरी ओर प्रामाणिकता तथा मानवीय स्वास्थ्य, दोनो की हानि होती है। दोनो की तुलना मे प्रथम हानि सह्य हो सकती है, किन्तु दूसरी नही हो सकती। उसने अपने निर्णय के अनुसार सारा माल पानी मे बहा दिया। धन प्राप्त होने पर मनुष्य को खुशी होती है, किन्तु प्रामाणिकता मे निष्ठा रखने वाले व्यक्ति को उसकी सुरक्षा होने पर और अधिक खुशी होती है। इसी दृष्टि से कहा गया है

"भले कोई निदा करे या स्तुति करे,
लक्ष्मी आए या चली जाए,
चाहे मौत आए या चिरजीवन प्राप्त हो,
प्रामाणिक मनुष्य सचाई का अतिक्रमण नही
करते।"

जिस मनुष्य का पेट दूषित है, वह गरिष्ठ भोजन

को खा सकता है, किन्तु खाने पर सुख का अनुभव नही करता। जिसका मन दूषित है—अप्रामाणिक है, वह धन प्राप्त कर सकता है, किन्तु उसे प्राप्त कर वह आन्तरिक शान्ति का अनुभव नही कर सकता।

हम समुद्र के तट पर खडे होते है। उसमे ज्वार आता है। उसका जल हमारे पैरो के आसपास आ जाता है। उससे न हमारे मन मे भय होता है और न उससे हमे कोई खतरा ही होता है, क्योकि समुद्र की मर्यादाशीलता मे हमे विश्वास है। उसका जलपूर एक झटके मे ही आगे नही बढता। वह धीमे-धीमे आगे बढता है। हम नदी के सामने वैसे खडे नही रह सकते। उसमे आकस्मिक ढग से जल बढ जाता है और वह आदमी को बहाकर ले जाता है।

नियमितता प्रामाणिकता का एक अग है। जहा अनियमितता होती है वहा विश्वास उत्पन्न नही होता। जो आदमी अपने व्यवहार के प्रति जनता मे विश्वास उत्पन्न नही कर सकता, वह सफल नही हो सकता। सफलता का मूल मत्र विश्वास है और विश्वास का मूल आधार है प्रामाणिकता।

विमर्श

१. प्रस्तुत पाठ में दी गई [illegible] शिक्षा प्राप्त होती है?

२. [illegible] ?

पौरुष की पूजा

पुराने जमाने की बात है। एक आदमी कुछ धन लेकर दूसरे गाव जा रहा था। रास्ते मे चलते-चलते थोडा जगल आ गया। उसके पास धन था इसलिए मन मे डर पहले से ही था। जगल मे वह कुछ और बढ गया। सामने से डाकू दल को आते देखा तब वह भय से अभिभूत हो गया। आगे बढने का साहस नही हुआ। वापस पीछे लौट जाने का भी साहस नही रहा। वह असहाय-सा होकर किसी की शरण खोजने लगा। उसने दाए-बाए दृष्टि दौडाई। उसे बायी ओर एक देवी का मन्दिर दिखाई दिया। वह उसमे चला गया।

उस प्रदेश मे देवी की बहुत बडी प्रभावना थी। हजारो लोग उसकी पूजा किया करते थे। वहा जाकर कोई भी आदमी निराश नही लौटता, यह जनप्रवाद निरतर फैल रहा था। मन्दिर के प्रागण मे पहुँचकर वह कुछ आश्वस्त हुआ। उसने देवी को प्रणाम किया। वह भक्ति-भरे स्वर मे बोला—"मा! मुझे बचा, मै तेरी शरण मे हूँ।" देवी विनम्रता से प्रसन्न हो गई।

वह बोली "तुझे डाकू लूटने आएँ तब हुकार कर देना, फिर कोई भी तेरे सामने नही आ सकेगा ।"

पथिक "मा, डर के मारे मेरा गला रुध गया है, हुकार मैं नही कर सकता ।"

देवी "जो तुझे लूटने आए, उसके सामने आख उठाकर देख लेना, फिर तुझे कोई नही पकड सकेगा ।"

पथिक "माँ, डर के मारे मेरी आखे पथरा गई है, मै आख उठाकर सामने नही देख सकता ।"

देवी "अच्छा, मन्दिर के किवाड बन्द कर लेना, फिर तुम नही लूटे जाओगे ।"

पथिक "मा, तुम कहती हो वह ठीक है पर डर के मारे मेरे हाथ सठिया गए है, मै किवाड बन्द नही कर सकता ।"

देवी "जा, मेरी प्रतिमा के पीछे छिप जा ।"

पथिक "मा, बहुत ठीक कहती हो पर डर के मारे मेरे पैर स्तब्ध हो गए है, मै चल नही सकता ।"

देवी ने क्रुद्ध स्वर मे कहा "ऐसे निर्वीर्य और निकम्मे आदमी की सहायता मै भी नही कर सकती ।"

एक व्यापारी के चार पुत्र थे । एक दिन व्यापारी ने सोचा, मै बूढा हो गया हूँ, अब मुझे अपने व्यापार का दायित्व किसी एक पुत्र को सौप देना चाहिए । उसने

चारो पुत्रो को बुलाकर कहा—"आज मैं तुम्हें आराम की जिंदगी जीने का अवसर देता हूँ। इतने दिन मैंने तुम पर बहुत अंकुश रखा। तुम्हें आराम का जीवन नहीं जीने दिया। तुम्हारे घर मे धन था, फिर भी उसका उपयोग नही कर सके। आज मैं इस स्थिति को बदलने का निश्चय कर चुका हूँ।" व्यापारी ने चार थैलिया उनके सामने रख दी। प्रत्येक थैली मे लाख-लाख रुपये थे। उसने कहा—"यह तुम्हारा व्यक्तिगत धन है। तुम जैसे चाहो वैसे खर्च करो और आराम का जीवन जीओ।" तीन बडे पुत्रो ने थैलिया उठा ली। सबसे छोटे पुत्र ने थैली को छुआ भी नही। वह बोला—"पिताजी! मैं यह धन नही लूगा।"

पिता—किसलिए?

पुत्र—यह मेरा धन नही है।

पिता—क्या इसे तू पराया मानता है?

पुत्र—जी, हा।

पिता—तेरा पालन-पोषण किससे हुआ है?

पुत्र—इसी धन से।

पिता—तो फिर?

पुत्र—पालन पोषण करना पिता का कर्तव्य है, किन्तु अकर्मण्यता की ओर ले जाना पिता का कर्तव्य नहीं है।

पिता क्या मै तुम्हे अकर्मण्यता की दिशा मे ले जा रहा हूँ ?

पुत्र जो व्यक्ति अपने पुरुपार्थ से धन अर्जित नही करता, अपने पुरखो की कमाई के बल पर जीता है, वह निश्चित ही अकर्मण्य हो जाता है और कठिनाई आने पर घुटने टेक देता है।

पिता मै जो दे रहा हूँ, उसमे क्या तुम्हारे भाग्य का साथ नही है ?

पुत्र भाग्य का हो सकता है, पुरुपार्थ का साथ नही है।

पिता- भाग्य पर तुम्हारा भरोसा नही है ?

पुत्र—है, पर पुरुपार्थ पर उससे कही अधिक भरोसा है।

पिता—इसका कारण ?

पुत्र आराम विफल हो सकता है पर पुरुपार्थ कभी विफल नही होता

'भाग्य वैफल्यमायाति, नाभ्यासस्तु कदाचन ॥'

पिता अपने छोटे पुत्र के पुरुपार्थ की आस्था पर मुग्ध हो गया। उसने अपने व्यवसाय का सचालन-भार उसके कधो पर डाल दिया। तीनों भाई हाथ मे थैलिया लिए देखते ही रह गए।

सफलता वही है जहाँ पुरुषार्थ है। इसी सत्य के परिपार्श्व में वैदिक ऋषि ने कहा था—"कृत मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहित"—मेरे दाए हाथ मे पुरुषार्थ है और बाए हाथ मे सफलता।

एक संस्कृत कवि ने लिखा है कि पाच मनुष्यो के पास लक्ष्मी जाना नही चाहती

१ जो आलसी है।
२ जो साहसहीन है।
३ जो गर्व से उन्मत्त है।
४ जो लोकमत की प्रतीक्षा करता रहता है।
५ जो अवसर की प्रतीक्षा करता रहता है।

वह मनुष्य आलसी होता है जिसके सामने आगे बढने का लक्ष्य नही होता। वह मनुष्य आलसी होता है जो भाग्य के भरोसे बैठा रहता है। भाग्य मे क्या है, यह किसी को ज्ञात नही है। भाग्य की अस्पष्ट लिपि पुरुषार्थ के प्रकाश मे ही पढी जा सकती है। जिसमे अपना पुरुषार्थ नही होता, उसे दुनिया की कोई भी शक्ति नही बचा सकती।

यह पृथ्वी एक पौधा है। इस पर सोने के पुष्प लगे है। उन्हे तीन प्रकार के लोग चुन सकते है—पराक्रमी,

विद्वान् और सेवक ।

सुवर्णपुष्पा पृथिवी त्रयश्चिन्वन्ति मानवा ।
शूरश्च कृतविद्यश्च, यश्च जानाति सेवितुम् ।।

विमर्श

१ पौरुष और भाग्य दोनो मे कौन-सा श्रेयस्कर है ?

२ किस प्रकार के पुरुषो के पास लक्ष्मी नही जाना चाहती ? उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए ।

३. प्रस्तुत पाठ मे दी गई लघु कथाओ मे से तुम्हे कौन-सी कथा अधिक अच्छी लगी और क्यो ?

झूठा मानदण्ड

कुआ बिलकुल रास्ते से सटा हुआ था। पथिकों के लिए मरुस्थल में वह गंगा के प्रवाह से भी अधिक पवित्र था। आने-जाने वाले लोग दो क्षण वहां विश्राम कर लेते और ठंडा पानी पी आगे चल देते। किसी कृपालु व्यक्ति ने एक छोटी-सी कुटिया बना दी और जल निकालने के लिये बाल्टी, रस्सी और पानी पीने के लिए एक दो गिलास रख दिए। इस सामग्री का उपभोग सभी राही करते थे।

एक दिन एक राही आया, कुआ देख ऊपर गया। जल निकालने-पीने के सभी उपकरण मौजूद थे। उसे गहरी प्यास थी। पर वह पानी पिये बिना ही बैठ गया। उसकी दृष्टि बार-बार पथ पर जा अटक रही थी। वह अधीर था, किसी की प्रतीक्षा में। थोड़ी प्रतीक्षा के बाद उसे एक आदमी आता हुआ दिखाई दिया। उसकी आँखों में त्राण भर गया।

जेठ की दोपहरी में छांह का आकर्षण एक राही के लिये कम नहीं होता। यदि जल उपलब्ध हो तो वह और अधिक बढ़ जाता है। कुए के निकट आते

ही पथिक सीढ़ियो पर चढा और वे दोनो एक-दूसरे की आँखो मे समा गये ।

पहले राही ने आगन्तुक का स्वागत किया । दो मिनट रुककर वह बोला, "भैया ! पानी पिलाओ, बहुत प्यासा हू ।"

आगन्तुक ने कहा—"रस्सी, बाल्टी और गिलास सब कुछ मौजूद है, फिर प्यासे क्यो बैठे हो ? बाल्टी को रस्सी से बाँधो, पानी निकाल लो और पी लो ।"

"भैया ! तुम कहते हो वह ठीक है पर मै कुए से पानी कैसे निकाल सकता हू ? मै अमीर का बेटा हू । यदि मै कुए से पानी निकालूँ और कोई देख ले तो क्या मेरी प्रतिष्ठा मिट्टी मे नही मिल जाएगी ?"

आगन्तुक राही बोला "भैया ! प्यास मुझे भी लगी है, धूप मे चलकर आया हू । कण्ठ सूख रहा है । बहुत बोलने की स्थिति मे नही हू । किन्तु करू क्या, जो कठिनाई तुम्हारे सामने है वही मेरे सामने है । तुम कुए से पानी नही निकाल सकते तो मै कैसे निकाल सकता हूँ ? तुम अमीर के बेटे हो तो मै नवाब का बेटा हूँ । पद की दृष्टि से तुमसे दो हाथ ऊचा हूँ ।"

अमीर के बेटे को लग रहा था कि नवाब के बेटे

को बोलने मे कठिनाई हो रही है पर वह उसकी सहायता कैसे कर सकता था ? जो अपने कण्ठ मे प्यास लिए बैठा है, वह दूसरो की प्यास को कैसे बुझा सकता है ?

अमीर के बेटे ने सतृष्ण नेत्रो से नवाव के बेटे को देखा और उसे अपनी पगत मे बैठा लिया।

दोनो किसी पानी पिलाने वाले की टोह मे थे। हवा के हल्के-हल्के झोके पेड के पत्तो को प्रकम्पित कर रहे थे। उनकी हर ममर ध्वनि पर उन्हे किसी पथिक के आने की कल्पना हो रही थी। उनकी दृष्टि मे एक ही चित्र अकित हो रहा था कि कोई आदमी आया है और उन्हे जल पिलाने को हाथ बढा रहा है। दोनो ने एक साथ देखा, एक आदमी आ रहा है। उन्हे अपने सकल्प की सफलता पर गव हुआ।

आकाश, भूमि, धूप, छाह, जल और वायु सब के लिये होते है। मनुष्य ने मकान बना आकाश और भूमि को अधिकृत करने की चेष्टा की है। वह धूप, छाह, जल और वायु पर भी अपना अधिकार जमाने का प्रयत्न कर रहा है। फिर भी ये इतने सावजनिक है कि इन पर कोई भी आदमी पूरा अधिकार नही कर सकता। जल पर कुए का अधिकार था पर कुए

पर किसी का अधिकार नही था। वह सबके लिए था। जो किसी के लिये होता है, उसका उपयोग निसकोच भाव से नहीं किया जा सकता। जो सबके लिए होता है, उसके साथ सबका अपनत्व जुड जाता है। आने वाले राही ने सार्वजनिक कुआँ देखा और वह जल पीने को ऊपर आ गया। उसने ऊपर आते ही देखा, दो आदमी बैठे है और उनके चेहरे से कोई अज्ञात आतुरता टपक रही है। उनके व्यक्तित्व उनके अभिजात होने की सूचना दे रहे थे। उसने दोनो की स्वीकृति ली और वह उन्ही की पगत मे जा बैठा। वह विनम्र स्वर मे बोला "क्या मै आपकी आतुरता का कारण जान सकता हूँ ?"

इस जिज्ञासा ने दोनो के मन मे आश्वासन का भाव जगा दिया। उन्होने सोचा, बडा दयालु आदमी है। हमारी आतुरता से वह व्यथित हुआ है। कारण जान लेने पर उसे दूर करने की चेष्टा अवश्य करेगा। वे बोले "भैया! तुम्हारी थकान देखकर जी नही चाहता कि कुछ कहे किन्तु कहे विना हमारी गति भी नही है, इसलिए हमे कहना ही होगा। बात यह है कि हम बहुत प्यासे है। कोई पानी पिलाने वाला नही आया, इसलिए हम बडे आतुर हो रहे है। बडी

कृपा होगी यदि तुम हमें पानी पिला सको।"

तीसरे आदमी ने आश्चर्य की मुद्रा में कहा—"भैया, मैं तुमसे ऐसी आशा लिए आया था। मैंने तुम्हें देखते ही सोचा कि दो राही बैठे हैं, मुझे जरूर पानी मिलेगा। क्या तुमने पानी निकाला ही नहीं ?"

"कुए से पानी निकालते तो प्यासे क्यों रहते ?"

"क्या कोई आपत्ति है पानी निकालने के लिए ?"

"आपत्ति कुछ नहीं है, पर 'कुछ' है।"

"वह 'कुछ' क्या है, मैं जान सकता हूँ ?"

"तुमसे पानी पीना है, इसलिए तुम्हें बताना ही होगा।" पहला राही बोला—"मैं अमीर का बेटा हूं, इसलिए कुए से पानी नहीं निकाल सकता।"

दूसरा बोला—"जब यह पानी नहीं निकाल सकता तब मैं कैसे निकाल सकता हूँ ? मैं नवाब का बेटा हूं।"

तीसरा बोला—"मेरी भी यही कठिनाई है, मैं शाह का पुत्र हूं। तुम कहो मैं कुए से जल कैसे निकालूं ?"

"नहीं, आप कैसे निकाल सकते हैं ?" दोनों एक साथ बोल उठे।

तीनो घर के भार से मुक्त होकर आये है पर मान्यता का भार अभी उनके सिर पर लदा हुआ है। जल जीवन की ज्वलत अपेक्षा है, फिर भी वे उससे वचित हो रहे है, क्योकि प्रतिष्ठा का झूठा मानदण्ड उनके सामने खडा है। वे जल के विना छटपटा रहे है, पर परम्परागत सस्कार के धागे को तोडे विना वे जल भी नही पा रहे है। तीनो बैठे-बैठे पथ की ओर निहार रहे थे। उन्हे पैरो की आहट सुनाई दी। वे सजग होकर बैठ गये। इतने मे पश्चिम की ओर से एक आदमी आया। सीढियो पर चढा। उसने देखा, तीन आदमी पहले से कुए पर बैठे है। वह उनकी अपेक्षा किए बिना ही आगे बढा। रस्सी बाधे बाल्टी को कुएँ मे उतारने की तैयारी करने लगा। वे तीनो आदमी उठकर उसके पास आ गए। उन्होने कहा "भैया ! आखिर तुम आ ही गए, हमारे भाग्य से खिचे हुए।"

"मै तुम्हारे भाग्य से खिचा हुआ कैसे आया ?" उस चौथे पथिक ने जिज्ञासा की।

वे बोले "हम बहुत देर से प्यास के मारे आकुल हो रहे थे। अब तक कोई आदमी नही आया, जो हमे पानी पिलाए। अब तुम आ गए। हम मानते है, हमारा

भाग्य ही तुम्हे खींच लाया।"

चौथा पथिक उनकी बात को समझ नही सका। वह भाह सिकोडते हुए बोला—"भले मनुष्यो! रस्सी, बाल्टी, गिलास सब कुछ यहाँ था, फिर भी तुम क्यो प्यासे मर रहे थे ?"

"जल निकालने के लिए सब कुछ था पर जल निकालने वाला कोई नही था।" उन्होने उदास भाव से कहा।

"क्या तुम लोगो के हाथ नही है, जो जल नही निकाल पाए ?

"हाथ तो है पर हम कुएँ से जल निकालने के लिये नही जन्मे है।"

"तो किसलिए ज मे है ?"

"निकाला हुआ जल पीने के लिये।"

वह चीख उठा, "हे भगवान! पुरुषार्थ की ज्योति बुझाकर ये लोग कब तक जिएगे ?"

"जो भाग्य लेकर जन्मे हैं, वे ऐसे ही जिएँगे।"

"क्या काम करने से भाग्य छोटा हो जाता है ?"

"हा काम करने मे भाग्य छोटा हो जाता है।"

"फिर बडा आदमी कौन होता हे ?"

"जो काम करवाता है, स्वय नही करता।"

"तुम कौन बडे आदमी हो ?"

तीनो एक साथ बोल उठे "अमीरपुत्र, नवाबपुत्र और शाहपुत्र ।"

उसने बात करते-करते बाल्टी कुए मे डाल दी, पानी निकाला और पीकर चलने लगा। वे पानी के लिए तरसते रहे। उसने यह कहकर उनकी माग ठुकरा दी कि मै प्रतिक्रियावादी हू, इसलिए दूसरो को जल पिलाना मेरे क्रियाकोप मे नही है। तीनो परस्पर फुसफुसाने लगे

"आज की दुनिया मे प्रतिक्रियावादी बहुत पैदा हो रहे है।"

वह चलते-चलते व्यग्य-बाण छोड गया कि जब तक तुम्हारे जैसे लोग अमीरपुत्र, नवाबपुत्र और शाहपुत्र बने रहेगे, तब तक प्रतिक्रियावादी पैदा होते ही रहेगे ।

विमर्श

१. प्रस्तुत पाठ से हमे क्या शिक्षा मिलती है ?
२ प्रतिक्रिया का उद्भव क्यो होता है ?
३ प्रस्तुत विषय पर अपने ही शब्दो मे एक निबन्ध लिखो ।

सत्ता का भोग : सत्ता का बँटवारा

वसंत वृक्ष की हर शाखा पर झूम रहा था। मधुमास नई कोंपलों पर मुसकान बिखेर रहा था। राज्य-सत्ता से विहीन राजनेता की भांति पतझड पर पटाक्षेप हो चुका था। नया रक्त और नया उल्लास शिराओं में संचारित हो रहा था। राजगृह का समूचा वातावरण हर्ष-पुलकित था। 'चैत्री पूर्णिमा घर में बिताने की नहीं होती। चलो, उपवन में चलें'— राज-पथ इन आमन्त्रण-ध्वनियों से प्रतिध्वनित हो रहा था। मध्याह्न से पहले-पहल घर के आंगन और राजपथ सूने हो गए। उपवन जनता से भर गए।

महाराज प्रसेनजित् आम्रवन की शीतल छाया में विश्राम कर रहे थे। उनके सामने एक कलमी आम का पेड था। उस बौने पेड पर महाराजा की दृष्टि टिकी। महाराज ने पूछा—'यह क्या है?' वन-पाल ने बताया—'यह कलमी आम है।' 'इसके बहुत शीघ्र फल लगने लगे है?' महाराज ने जिज्ञासा की। वनपाल ने अभिवादन कर परम्परागत आम और कलमी आम का अंतर समझाया।

महाराज मन ही मन सोचने लगे, परम्परा के परिवर्तन से ह्रास ही नही, विकास भी होता है। यह परम्परा का परिवर्तन नही होता तो मनुष्य पेड की छाल ही पहने होता, रुई के कपडे नही बन पाते। यह परम्परा का परिवर्तन नही होता तो मनुष्य वृक्षवासी होता, ये प्रासाद नही बन पाते।

सृष्टि का कण-कण परिवर्तन की परिक्रमा कर रहा है। जीवन-सिन्धु की हर ऊर्मि परिवर्तन से प्रकपित है। इस परिवर्तन के महाप्रपात मे क्या राज्य-परम्परा अपरिवर्तनीय है? नही, जो मनुष्य द्वारा कृत है वह कुछ भी अपरिवर्तनीय नही है। मुझे आज नया प्रकाश मिला है। अब मैं अशाश्वत को शाश्वत का परिधान नही पहनाऊगा।

पूर्णिमा का चॉद धरती का आलिगन कर प्रमत्त हो रहा था। चॉद की चॉदनी से प्रमत्तजन-नेत्रो मे नीद डूब-तैर रही थी। जनप्रवाह फिर नगर की ओर बह चला। महाराज उपवन के शयन-कक्ष मे ही सो गए।

सूर्योदय हुआ और राजगृह के राजपथ जनाकीर्ण हो गए। प्रथम पहर पूरा बीता नही था। महाराज राज-सभा मे आ सिहासन पर बैठ गए। महाराज ने

पाकशाला के अधिकारी को बुलाकर कहा—'आज सभी राजकुमार एक साथ भोजन करेंगे। जाओ, उनकी व्यवस्था करो।' महाराज ने पशुशाला के अधिकारी को बुलाकर कुछ कहा। अत्यन्त गोपनीय ढंग से कहा, इसलिए सभासद कुछ जान नहीं पाए। मध्याह्न का समय हुआ। राज-सभा का कार्य सम्पन्न कर महाराज उठे। उनके पीछे सब उठ खड़े हुए। महाराज भोजन-गृह की ओर चले और उनके पीछे-पीछे राजकुमार भी चल पड़े। भोजनशाला में जाकर महाराज ने सारी व्यवस्था का निरीक्षण किया। एक सौ एक आसन बिछे हुए थे। एक महाराज के लिए और सौ राजकुमारों के लिए। सबके आगे भोजनपट्ट और उन पर स्वर्णथाल रखे हुए थे। महाराज अस्वस्थ होने का बहाना कर ऊपर के वातायन में जा बैठे। राजकुमार अपने-अपने आसन पर बैठ गए। पाकशाला के कमकर आए और भोजन परोस दिया। कमकर फिर पाकशाला में चले गए। दो क्षण के लिए भोजनशाला के दरवाजे बन्द हो गए। राजकुमार भोजन का पहला कौर चबा रहे थे। इतने में दरवाजे का फाटक खुला और शिकारी कुत्ते राजकुमारों पर झपट पड़े। राजकुमारों में भगदड़ मच गई। दो-चार

मिनट मे भोजनशाला खाली हो गई । महाराज ऊपर बैठे-बैठे सब कुछ देख रहे थे। उस लम्बी पक्ति मे केवल एक राजकुमार बैठा था। और सब आसन खाली पडे थे। वह था श्रेणिक सबसे छोटा और सबसे अधिक दक्ष। कुत्ते राजकुमारो द्वारा छोडे थालो को चट करने मे लग गए। इतने मे श्रेणिक ने अपने आसपास थाल जमा कर लिए। कुत्ते जैसे ही उस ओर लपके उसने कुत्तो के सामने थाल सरका दिए। वह स्वय खाता रहा और कुत्तो को खिलाता रहा। वह भोजन से तृप्त हो महाराज के पास चला गया।

आज राजसभा मे चारो ओर एक ही प्रश्न पूछा जा रहा था 'भोजनशाला मे शिकारी कुत्ते कैसे आए ?' किन्तु महाराज प्रसेनजित् ने एक दूसरा प्रश्न पूछा 'तुम भोजन किए बिना ही क्यो भाग खडे हुए ?' राजकुमारो ने एक स्वर से उत्तर दिया 'महाराज ! यदि हम नही भागते तो शिकारी कुत्ते हमे काट खाते।' महाराज ने श्रेणिक से पूछा 'तू क्यो नही भागा ? क्या तुझे कुत्तो के काट खाने का डर नही था ?' श्रेणिक ने सहज भाव से उत्तर दिया। 'महाराज ! जो बॉट-बॉटकर खाता है, उसे कुत्ते नही काटते।'

महाराज ने श्रेणिक के सिर पर अपना मुकुट रखते हुए कहा—'मेरा उत्तराधिकारी वही हो सकता है जो सत्ता और संपदा को बांट-बांटकर खाना जानता है।'

विमर्श

१ इस पाठ से हमें क्या कुछ शिक्षा मिलती है?
२ राजा प्रसेनजित् ने अपना उत्तराधिकारी चुनने के लिए कौन सा उपाय ढूंढा?

अनुशासन

एक दिन एक विद्यार्थी मेरे पास आया। वह बी० ए० मे पढ रहा था। उसने बातचीत के सिलसिले मे पूछा आपकी दृष्टि मे स्वतन्त्रता का मूल्य अधिक है या अनुशासन का ? मैने कहा मुझे दोनो प्रिय है और समान रूप से प्रिय है, इसलिए मै यह बताने मे असमर्थ हू कि किसका मूल्य कम है और किसका अधिक है।

विद्यार्थी क्या इन दोनो मे आप कोई विरोध नही देखते ?

मै मुझे कोई विरोध दिखाई नही देता।

विद्यार्थी यह कैसे कह रहे है ? अनुशासन से स्वतन्त्रता बाधित होती है, फिर उनमे विरोध कैसे नही होगा ?

मै अनुशासन के बिना स्वतन्त्रता प्राप्त नही होती। मै उनमे वह अभिन्नता देखता हूँ, जो मिट्टी और घडे मे है। क्या घडा मिट्टी के बिना हो सकता है ? क्या अनुशासन के बिना स्वतन्त्रता उप-लब्ध हो सकती है ? कभी नही।

विद्यार्थी—क्या आप स्वीकार करेंगे कि अनुशासन विवशता नहीं है? क्या आप स्वीकार करेंगे कि अनुशासन बाध्यता नहीं है?

मैं—हम सामाजिक जीवन जी रहे हैं। उसमें स्वतन्त्रता असीम नहीं हो सकती। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की सीमा से बँधा हुआ है। इसलिए सामाजिक जीवन में विवशता और बाध्यता का बंधन तोड़ा नहीं जा सकता।

विद्यार्थी—तो क्या हम पूर्ण स्वतन्त्र नहीं हो सकते?

मैं—यह दुनिया स्वयं अपूर्ण है। फिर इसमें जन्म लेने वाला कोई पूर्ण कैसे होगा? मुझे दूसरे के सहयोग की अपेक्षा है और दूसरे को मेरे सहयोग की अपेक्षा है। हम दोनों परस्पर अपेक्षा से बंधे हुए हैं, इसलिए हम एक-दूसरे की मर्यादा को अमान्य नहीं कर सकते।

विद्यार्थी—इसका अर्थ यह हुआ कि मुझे मेरे माता-पिता से अपेक्षा है, इसलिए वे जैसे चाहे वैसे मुझे चलाएं।

मैं—तुम्हें अपने माता-पिता से अपेक्षा है तो क्या तुम्हारे माता-पिता को तुमसे अपेक्षा नहीं है?

विद्यार्थी अवश्य है।

मैं तो फिर, उनका कर्तव्य होगा कि तुम्हे जैसे चाहे वैसे न चलाएँ, किन्तु वैसे चलाएँ, जैसे चलने की तुम्हारी अभिरुचि हो और वह तुम्हारे हित मे बाधक न हो।

विद्यार्थी एक पुत्र पिता का निर्देश नही मानता, वह अनुशासनहीन होता है, किन्तु उसका पिता सामाजिक या राजकीय व्यवस्था का पालन नही करता, क्या वह अनुशासनहीन नही है ?

मैं दूसरो का निर्देश मानना अनुशासन का मौलिक अर्थ नही है। वह एक स्थूल अर्थ है। उसका मौलिक अर्थ है अन्त करण में कर्तव्य की प्रेरणा का जागृत होना और अनाचरणीय का आचरण न करना। अपने से अधिक अनुभवी लोगो का निर्देश इस कार्य मे सहायक बनता है, इसलिए उसे भी अनुशासन माना जाता है, किन्तु वस्तुत. अनुशासन व्यक्ति की अपनी विशेषता है। क्या अपना अनुशासन अपनी स्वतन्त्रता नही है ?

विद्यार्थी यह आत्मानुशासन है। इसमे और स्वतन्त्रता मे कोई विरोध नही है। स्वतन्त्रता का विरोध उस अनुशासन से है, जो दूसरो के द्वारा थोपा

जाता है ।

मैं—आत्मानुशासन की अपूर्णता या अभाव मे दूसरो का आदेश आता है । वह परतन्त्रता अवश्य है पर उस परतन्त्रता को जाने का अवकाश वही व्यक्ति देता है, जो आत्मानुशासित नही है ।

विद्यार्थी—क्या मैं जान सकता हूँ कि आत्मानुशासन के विकास के तत्त्व कौन-कौन-से है ?

मै—जीवन का ऊर्ध्वगामी लक्ष्य, सार्वभौम दृष्टिकोण, स्वार्थरहित मनोवृत्ति, आत्मनियन्त्रण, सहिष्णुता, स्वतन्त्रता की प्रबल आकांक्षा और सत्य की उत्कट जिज्ञासा—इन तत्त्वो से आत्मानुशासन की लौ प्रज्वलित होती है ।

विद्यार्थी—क्या मन की एकाग्रता और अनुशासन मे कोई सम्बन्ध है ?

मैं—मन की चचलता का ही दूसरा नाम अनुशासनहीनता है । उसकी एकाग्रता का अभ्यास करने वाला अनुशासनहीन नही हो सकता । अनुशासन का प्रतिपादन उन्ही लोगो ने किया है, जिनका मन एकाग्र था । उसका पालन भी वे ही लोग कर सकते है जिनका मन एकाग्र है । उससे लाभान्वित भी वे ही लोग हो सकते है, जिनका मन एकाग्र है। मन की एकाग्रता के

बिना विद्या, कला या विज्ञान, किसी भी ज्ञान-शाखा का विकास नही हो सकता।

विद्यार्थी मन की एकाग्रता एक योगी के लिए आवश्यक हो सकती है, किन्तु एक विद्यार्थी के लिए उसकी क्या आवश्यकता है ?

मैं योग का एक अर्थ है, कर्म में कुशल होना। जो कर्म मे कुशल है वह योगी है। इसके अनुसार वह हर आदमी योगी है, जो कर्म में कुशल है। विद्यार्थी के लिए विद्यार्जन करना है, इसलिए मन की एकाग्रता का अभ्यास करना उसके लिए स्वय प्राप्त है। आज तक जितने आविष्कार हुए है, वे सब मानसिक एकाग्रता के धनी लोगो ने किए है।

मैने देखा अब मेरे और उस विद्यार्थी के विचारो में कोई भेद नही रहा। आत्मानुशासन को मै भी आवश्यक मानता हू और वह भी मानता है। सामाजिक जीवन मे व्यवस्था की अनिवार्यता को मै भी अस्वीकार नही करता और वह भी नहीं करता। अर्थशून्य नियन्त्रण मुझे भी मान्य नही है और उसे भी मान्य नही है। अब इस बिन्दु पर भी एकमत है कि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर अनुशासन न करे और यदि अपेक्षावश कुछ करे तो उसके आत्मानुशासन

को जगाने के लिए करे, किन्तु उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व को कुचलने के लिए न करे। विद्यार्थी भी अनुशासन का उपयोग आत्मानुशासन को जगाने के लिए करे, किन्तु अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को मूर्च्छित करने के लिए न करे।

विमर्श

१ स्वतन्त्रता और अनुशासन एक ही है या दो है? दोनो मे क्या सम्बन्ध है?

२ अनुशासन की परिभाषा अपने शब्दो मे लिखो।

३ विद्यार्थियो के लिए मन की एकाग्रता आवश्यक क्यो मानी गई है?

बलिदान

एक पौराणिक कहानी है। महर्षि नारद यात्रा पर निकले। वे घूमते-घूमते स्वर्ग मे चले गए। नारद के लिए दुनिया के किसी भी कोने मे प्रवेश निषिद्ध नही था। वे सीधे भगवान् के पास गए। भगवान् ने उन्हे देखा। वे भगवान् को प्रणाम कर उनके सामने बैठ गए। भगवान् के पास धर्मदूत बैठा था और वह पुस्तको के पन्ने पलट रहा था। थोडी देर मौन-उपासना के बाद नारद ने पूछ लिया 'भगवन्! आज आप किस गभीर समस्या मे सलग्न है?' 'भक्तो की सूची तैयार हो रही है। मै उसी कार्य मे व्यस्त हूँ।' भगवान् ने कहा। नारद के मन मे एक जिज्ञासा पैदा हो गई। वे उसे रोक नही सके। उन्होने भगवान् से पूछा 'भगवन्! क्या मै जान सकता हूँ कि भक्तो की सूची मे पहला नाम किसका है?' भगवान् ने कहा 'यह जानकर क्या करोगे, महर्षि? इतना जान सकते हो कि पहला नाम तुम्हारा नही है।' नारद को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। उन्हे यह कल्पना ही नही थी कि मनुष्य-लोक मे उनसे बडा कोई भक्त है।

नारद के मन मे छटपटाहट पैदा हो गई। वे प्रथम भक्त का नाम जानने को आकुल हो गए। उन्होने प्रथम भक्त का नाम जानने के लिए कई प्रयत्न किए पर भगवान् के सामने उनका कोई भी प्रयत्न सफल नही हुआ। वे शान्त होकर बैठ गए।

भगवान् ने देखा नारद का अन्तःकरण अकुला रहा है। भगवान् को महर्षि पर करुणा आ गई। महर्षि के देखते-देखते भगवान् गहरी चिंता मे डूब गए। महर्षि ने उसका कारण पूछा। भगवान् ने कहा—'मुझे अभी-अभी मनुष्य के हृदय की जरूरत है। उसे पाने के लिए में चिंतित हूं। क्या तुम मेरी इस चिन्ता का निवारण कर सकते हो ?' महर्षि ने कहा—'मैं अभी जाता हूँ। मुझे विश्वास है कि मे आपकी आवश्यकता को शीघ्र ही पूर्ण कर पाऊंगा।' महर्षि तत्काल दौडे। वे मनुष्य-लोक मे पहुँचे। उन्होने देखा, काशी मे भक्त-मडली बैठी है। भजनो का समा बँध रहा है। महर्षि उनके बीच गए। उन्हे देखते ही सब लोग उनके स्वागत मे खडे हो गए। लोगो ने पूछा—'महर्षि! किधर से आ रहे हे ?'

नारद—'स्वर्ग से आ रहा हूँ।'

'कहिए, कोई विशेष प्रयोजन हे ?' भक्त-मडली

ने पूछा ।

नारद 'भगवान् को एक मानव-हृदय की जरूरत है। उसे ले जाने के लिए आया हूँ। आप लोग भगवान् के बडे भक्त है। मैं आपसे आशा करता हूँ कि मुझे कोई भक्त-मनुष्य अपना हृदय निकालकर दे देगा।'

नारद की यह बात सुनकर सब लोग मौन हो गए। नारद ने अपनी माँग दोहराई। एक भक्त बोला 'मै भगवान् के लिए अपना हृदय दे सकता हूँ, पर मुझे खेद है कि मै भगवान् के नाम का जप कर रहा हूँ, वह अभी अधूरा है, इसलिए अभी मै अपना हृदय देने मे असमर्थ हूँ।'

दूसरे भक्त ने कहा 'मै अभी भगवान् की भक्ति मे संलग्न हूँ।'

तीसरे ने कहा 'मै अभी भगवान् की प्राप्ति के लिए साधना कर रहा हूँ।'

सबने अपनी-अपनी सफाई पेश कर दी पर हृदय किसी ने नही दिया। नारद निराश होकर लौट गए।

महर्षि ने उडान भरी और वे सीधे तीर्थराज प्रयाग पहुँचे। वहाँ पवित्र सगम के तट पर भक्तो की

भीड जमा हो रही थी । महर्षि को देखकर भक्त लोग पुलकित हो उठे । सबने महर्षि का अभिवादन किया और आगमन का कारण पूछा । महर्षि ने अपने आगमन का कारण बता दिया । सब लोगो ने कहा —'आपकी माग असामयिक है । अभी हम लोग पवित्र सगम मे स्नान नही कर पाए है । आप कुछ दिन ठहरिए । स्नान-यात्रा का कायक्रम सम्पन्न हो जाय । फिर हम आपके प्रस्ताव पर सोच सकते है ।' नारद को जल्दी जाना था इसलिए वे भक्तो के प्रस्ताव से सहमत नही हुए । वे वहा से चल पडे । उन्होने सारे धमस्थानो की परिक्रमा कर ली । भक्त-जनता ने बडी तत्परता से उनके प्रस्ताव का स्वागत किया पर हृदय किसी ने नही दिया । नारद अपनी असफलता पर पछताने लगे । वे निराशा से भरे हुए मुँह को एक हथेली मे थामे हुए जगल मे से गुजर रहे थे । सामने से एक आदिवासी भील आया । उसने देखा महर्षि नारद चले आ रहे है । उसने फिर देखा, महर्षि आज बहुत उदास हे । उसे बहुत आश्चय हुआ । वह आज पहली बार महर्षि की मुखमुद्रा को उदासी के सागर मे डुबकी लगाते देख रहा था । वह महर्षि के सामने खडा हो

गया। उसने प्रणाम कर उदासी का कारण पूछा। महर्षि ने वह बताने से इनकार कर दिया। उन्होंने मन ही मन सोचा, मेरी मॉग को बडे-बडे भक्त लोग भी पूरा नही कर पाए तब यह जगली आदमी उसे क्या पूरा करेगा ? अनावश्यक बात नही कहनी चाहिए। भील ने जिद पकड ली। उसने महर्षि का रास्ता रोक लिया। महर्षि को विवश होकर उदासी का कारण बताना पडा। महर्षि की बात सुनते ही भील झूम उठा। वह बोला 'भगवान् को मानव-हृदय की जरूरत है और उसके लिए आप इतने चिंतित है। मै इस बात को सहन नही कर सकता। आप ले, अभी मै अपना हृदय निकालकर देता हूँ।' भील ने तत्काल बाण तैयार किया और उससे अपना हृदय निकालकर महर्षि को दे दिया। महर्षि उडे और तत्काल स्वर्ग में पहुँच गए। मनुष्य का हृदय भगवान् के सामने रख दिया। भगवान् ने कहा 'नारद ! तुमने बहुत विलम्ब कर दिया। मुझे जब जरूरत थी तब तुम इसे नही ला सके।' नारद बोले 'भगवन् ! मै क्या करूं, किसी भक्त ने अपना हृदय दिया ही नही। मै बहुत घूमा। सब धर्मस्थानो का चक्कर लगा आया पर मुझे अपने काम

मे सफलता नही मिली। आखिर एक जगली आदमी ने यह हृदय दिया है। उसे लेकर मै यहाँ तत्काल पहुँचा हूँ।' भगवान् थोडा हँसे और बोले—'नारद ! तुम इतने क्यो घूमे, क्या तुम्हारे पास हृदय नही था ?' यह सुनकर नारद अवाक् रह गए। भगवान् ने कहा —'भक्तो की सूची मे पहला नाम उसी का हो सकता है, जो अपना बलिदान करना जानता है।' भगवान् ने भक्तो की सूची नारद के हाथ मे दे दी। उसमे पहला नाम उसी भील का था, जिसने अपना हृदय दिया था।

समाज का प्रासाद आत्मबलिदान की ईंटो से निर्मित होता है। जो व्यक्ति अपने स्वार्थों का बलिदान करना नही जानता वह समाज के भार से दबता है, किन्तु ऊचा नही उठ सकता। दुनिया की सारी ऊँचाई का इतिहास उन लोगो का इतिहास है जिन्होने स्वार्थ से ऊपर उठकर काम किया है। महाराणा प्रताप, महाराज शिवाजी, भामाशाह आदि-आदि महापुरुष बलिदान के आधार पर ही अमर बने ह।

आत्मविश्वास

एक पुजारी मेमने को कन्धे पर लिये जा रहा था। रास्ते मे चार ठग मिले। उन्होने मेमने को लेना चाहा। उनमे से एक आदमी आगे आकर बोला—'पुजारी! तुम बहुत भोले आदमी हो। आज तुम्हे यह क्या सूझा जो कुत्ते को कधे पर लटकाए जा रहे हो?' पुजारी ने मेमने की ओर देखा और उसकी बात को सुना-अनसुना कर दिया। वह थोडी दूर गया, फिर दूसरा आदमी सामने आया और बोला—'पुजारी, आज यह कुत्ता कहाँ से खरीदकर लाए हो?' पुजारी ने पुन मेमने पर दृष्टि डाली। उसके मन मे थोडा सन्देह घुस गया। वह पचास कदम आगे बढा, इतने मे तीसरा आदमी आकर बोला—'पुजारी! क्या कुत्ते को बेचने के लिए ले जा रहे हो?' पुजारी ने मेमने को ध्यान से देखा। पर उसका आत्मविश्वास हिल गया। उसे अपनी आँखो पर पूरा भरोसा नही रहा। उसके मन मे विकल्प पैदा हो गया—कही मेरा ही दृष्टिदोप तो नही है? मेमने के स्थान पर कही कुत्ता ही तो नही उठा लिया है? वह स देह के झूले मे झूलता हुआ थोडा आगे

बढ़ा। चौथा आदमी सामने आया और व्यंग्य की भाषा मे बोला। 'पुजारी! क्या कुत्ता लिए पूजा करने जा रहे हो?' पुजारी ने आत्मविश्वास खो दिया। उसने सोचा, सभी लोग कुत्ता कह रहे है तो फिर यह मेमना कैसे हो सकता है? सचमुच मेमने के स्थान पर मै कोई कुत्ता उठा लाया हूँ। पुजारी मेमने को छोडकर आगे चला गया।

पुजारी ने मेमने को खोया, यह बहुत छोटी बात है। आत्मविश्वास को खोने वाला जीवन के सर्वस्व को भी खो देता है।

एक था बाप, एक था बेटा। दोनो किसी कार्य-वश दूसरे गॉव जा रहे थे। साथ मे एक घोडा था। दोनो पैदल चल रहे थे। वे बाजार मे आये। लोगो ने कहा 'देखो, कितने मूर्ख है! घोडा पास है, फिर भी पैदल चल रहे है।'

बूढा घोडे पर सवार हो गया और लडका उसकी लगाम पकडकर आगे चलने लगा। लोगो ने यह देखा और बोले 'देखो, बूढा कितना निर्दयी है! खुद घोडे पर सवार है और छोटे बच्चे को पैदल घसीट रहा है।'

बूढा नीचे उतर गया और लडके को घोड़े पर

बिठा दिया। थोडी दूर चले। लोगो ने उनको देखा। वे बोले —'देखो, कैसी विचित्र बात है! लडके का नया खून ह। यह पैदल चल सकता है, फिर भी घोडे पर बैठा है और यह बेचारा बूढा पैर घसीटता-घसीटता पैदल चल रहा हे।' बूढे ने सोचा—मैं भी घोडे पर बैठ जाऊँ, फिर कोई क्या कहेगा? वह भी घोडे पर सवार हो गया। अब दोनो घोडे पर बैठे चले जा रहे थे। लोगो की दृष्टि उन पर पडी। वे बोले—'देखो, कितने क्रूर आदमी ह! मरियल घोडा है, उस पर दोनो लद गये। बूढे ने यह सुना। वह बडे असमजस मे पड गया—'अब म क्या करूँ?'

जो आत्मविश्वास के साथ नही चलता वह न चढकर चल सकता है और न पैदल चल सकता हे।

पौराणिक कहानी हे। एक किसान हाथ मे कुदाली लेकर पहाड को खोद रहा था। उसी समय उस रास्ते से विधाता आ निकला। उसने यह देख किसान से पूछा—'तुम किसलिए यह काम कर रहे हो?'

किसान ने सहज भाव से कहा—'पहाड को यहा से हटाना चाहता हूँ।'

विधाता—'इसका कोई प्रयोजन है?'

किसान—'इधर से जो बादल आते है वे इस पहाड

से टकराकर यही बरस जाते है। मेरे खेत तक नही पहुँच पाते। यह मेरी खेती के लिए रोड़ा है। इस-लिए मै इसे हटाकर रहूँगा।'

विधाता 'इतना बडा काम तुम कर सकोगे?'

किसान 'अवश्य करूँगा।'

विधाता 'कैसे करोगे?'

किसान ने आत्मविश्वास के साथ कुदाली चलाई और कहा 'ऐसे करूँगा।'

पहाड़ अधीर हो उठा। वह विधाता के पास आ-कर बोला 'भगवन्! मेरी रक्षा करो।'

विधाता 'तुम इतने विशालकाय हो, फिर क्यों डरते हो? वह छोटा-सा आदमी तुम्हारा क्या बिगाड सकता है?'

पहाड 'भगवन्! यह आदमी छोटा है पर इसका आत्मविश्वास छोटा नही है।'

विधाता ने उसकी बात पर ध्यान नही दिया। उसे हल्की-सी हँसी के साथ टाल दिया। कुछ वर्षो बाद एक बार फिर विधाता उधर से निकला। तब उसने देखा कि पहाड का चिकना और मजबूत पत्थर गाडियो मे भरा जा रहा है और सैकडो छेनियाँ चल रही है। फलत पहाड छोटा होता जा रहा है।

दूसरों का सहयोग उसी को प्राप्त होता है जिसका आत्मविश्वास प्रबल होता है। जो संशयशील होता है, वह विनष्ट हो जाता है—'संशयात्मा विनश्यति।'

आत्मविश्वासी आदमी बड़ी से बड़ी कठिनाइयाँ पार कर जाता है। इसलिए कहा है—जिसका जैसा आत्मविश्वास होता है वह वैसा ही बन जाता है।

विमर्श

१ प्रस्तुत पाठ की लघु कथाओं से हमें क्या शिक्षा मिलती है?

२ संशयशील विनष्ट क्यों हो जाता है? उदाहरण सहित समझाइए।

३ आत्मविश्वास खोने वाला अपना सर्वस्व कैसे खो बैठता है?

सामाजिक ऋण और उऋणता

ढाई हजार वर्ष पहले की बात है। एक राजा था। उसका नाम था जितशत्रु। वह वन-यात्रा के लिए गया। उसका घोडा वक्रगति का था। जैसे ही राजा ने उसकी लगाम खीची वैसे ही वह पवन गति से दौडने लगा। राजा अकेला आगे चला गया। उसके साथी पिछड गए। उसे प्यास लग गई। उसने जैसे ही लगाम छोडी घोडा रुक गया। उसने चारो ओर दृष्टि दौडाई। उसे एक छोटी-सी पहाडी पर एक झोपडी दीखी। वह उधर गया। झोपडी मे से एक आदमी निकला। उसका नाम था दमडीवाला। उसने राजा का हार्दिक स्वागत किया और अपनी झोपडी मे ले गया। राजा को एक आसन पर बिठा दिया। उसने राजा का बहुत आतिथ्य किया। रोटी खिलाई, पानी पिलाया। हवादार जगह मे राजा को सुला दिया। घटा भर सोने के बाद राजा उठा। इतने में राजा के सैनिक भी पता लगाते-लगाते वहा पहुच गए। राजा दमडीवाला के आतिथ्य से बहुत प्रसन्न हुआ। वह अपनी राजधानी की ओर लौटने लगा तब

उसे भी साथ ले लिया। दूसरे दिन की राज्यसभा का कार्य इसी प्रश्न से प्रारम्भ हुआ कि सैनिकों ने महाराज को अकेले कैसे जाने दिया? उन्हें इस दायित्व-हीन कार्य के लिए क्यों नहीं कठोर दंड दिया जाए?

मंत्री इस प्रश्न का उत्तर देने की स्थिति में नहीं थे। राजा ने स्वयं इस प्रश्न का उत्तर दिया। उसने कहा—'मैं जो अकेला आगे चला गया, उसमें सैनिकों का कोई दोष नहीं है। यह मेरा ही दोष है। मैंने अपनी सवारी के लिए जिस घोड़े को चुना, वह वक्र-गति का था। मुझे इसका पता नहीं था। उसकी गति बहुत तेज थी। उसे दूसरे घोड़े नहीं पहुँच सकते थे। वह घोड़ा मुझे बहुत आगे ले गया। मैं अपने सैनिकों से बिछुड़ गया।'

राजा ने दमड़ीवाला को सभा में प्रस्तुत किया। वह बोला—'आज मैं सभासदों के बीच में हूँ, वह सब इसी दमड़ीवाला के आतिथ्य का फल है। यदि यह वहां नहीं मिला होता तो मेरे प्राण जल के लिए तड़पते-तड़पते चले जाते। इसने उस विकट स्थिति में मुझे बचाया, इसलिए मैं इसका बहुत आभारी हूँ।' राजा के इस आभार-प्रदर्शन के साथ सारी सभा धन्यवाद-धन्यवाद के स्वरों से गूंज उठी। हर्षोन्मत्त

सभासदो ने दमडीवाला को ऊपर उठा लिया। दो मिनट के बाद वातावरण शान्त हुआ। दमडीवाला ने कहा 'मुझे जो इतना श्रेय दिया जा रहा है वह महाराज तथा सभासदो का मुझ पर स्नेह है, किन्तु मैने ऐसा कोई बडा काम नही किया। मैने केवल अपने प्राथमिक कर्तव्य का पालन किया था।'

राजा ने कहा 'तुम्हारे उस कर्तव्य-पालन का मेरे लिए बहुत मूल्य है। मै उसका बदला नही चुका सकता। फिर भी मै तुम्हे कुछ देना चाहता हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो वह तुम माँग लो।'

दमडीवाला बड़े असमजस मे पड गया। दो क्षण रुककर वह बोला 'मुझे किसी चीज की जरूरत नही है, फिर मै क्या माँगूँ और क्यो माँगूँ ?'

राजा 'क्या तुम हर प्रकार से सम्पन्न हो ?'

दमडीवाला 'जी, हा।'

राजा—'क्या तुम हर प्रकार से सुखी हो ?'

दमडीवाला 'जी, हां।'

राजा 'क्या तुम हर प्रकार से सतुष्ट हो ?'

दमडीवाला 'जी, हा।'

राजा 'तुम्हारी जीविका कैसे चलती है ?'

दमड़ीवाला 'पुरुषार्थ करता हूँ और कमाता हूँ।'

राजा—'तुम्हारी दैनिक कमाई क्या है ?'

दमड़ीवाला—'हर रोज छः दमड़ी (तत्कालीन सिक्का) कमाता हूँ।'

राजा—'इतनी थोड़ी कमाई से कैसे काम चलता है ?'

दमड़ीवाला—'बहुत अच्छी तरह से चल जाता है।'

राजा—'पूरा ब्योरा सुनना चाहता हूँ।'

दमड़ीवाला—'मेरे परिवार मे हम चार सदस्य हैं—दो मेरे माता-पिता और दो हम—मै और मेरी पत्नी। चार दमड़ियो से चारो सदस्यो का दैनिक खर्च चल जाता है। एक दमड़ी मैं खजाने मे जमा करता हूँ जो विशेष स्थिति मे काम आ सके। और एक दमड़ी शेष रहती है, उसे अपने असमर्थ सामाजिक भाइयो को देकर सामाजिक ऋण चुकाता हूँ।'

दमड़ीवाला की अंतिम बात सुनकर राजा अवाक् रह गया। वह आत्मालोचन मे गहरी डुबकियां लेने लगा। तत्काल उसके सामने तीन प्रश्नचिह्न उभर आए—

१ क्या मैंने कभी श्रम की रोटी खाई है ?

२ क्या मैंने इतनी मितव्ययिता से धन का उप-

योग किया है ?

३. क्या मैंने असमर्थ भाइयों का सहयोग कर सामाजिक ऋण चुकाया है ?

विमर्श

१ राजा ने आत्मालोचन मे क्या सोचा ?

२ राजा के कहने पर भी दमडीवाले ने क्यो नही मॉगा ?

सहिष्णुता

वसन्तोत्सव के दिन थे। हरिकेशवल अपने परिवार के साथ गोठ मे गया था। रसोई बन रही थी। बच्चे खेल रहे थे। हरिकेश बच्चो के साथ मारपीट कर रहा था। बडे-बूढो ने उसके कतव्य देखे। उसे पक्ति से निकाल दिया। दूसरे बच्चे खेल रहे थे। वह दूर खडा-खडा एकटक निहार रहा था। इतने मे वहा एक साप आया। लोग दौड, लाठिया उठी। साप को मार दिया। बच्चे फिर खेलने लगे। थोडी देर बाद एक गोह आयी। लोग दौड पडे, उसे उठाया और एक ओर डाल आए। हरिकेश समझ नही पाया। वह एक बूढे के पास गया। उसने पूछा—"ऐसा क्यो हुआ, बाबा?" बूढे ने कहा—"साप मे विप होता हे, गोह मे वह नही होता।" हरिकेश मन ही मन सोचने लगा— म इसी-लिए तो पक्ति से निकाला गया हूँ कि मुझमे विप हे।'

जिस मे विप नही होता उसे कोई नही सताता। सताया वही जाता हे जो जहर उगलता है। इस सत्य को समझ लेने से जहर पल-भर मे अमृत बन जाता हे।

एक कुल-पुत्र के भाई को शत्रु ने मार डाला। उसकी माता ने कहा "पुत्र! जाओ, अपने भाई की मृत्यु का बदला लो। मेरे पुत्र-घातक को मार डालो।" वह माता का आशीर्वाद ले घर से निकला। पौरुष फूट रहा था। 'वैर से वैर शान्त होता है'—यह विचार उमड रहा था। जिसमे करने का सकल्प होता है, उसके लिए क्या सम्भव नही होता! वह अपने भाई के हत्यारे को पकड मा के पास ले आया। वह उस हत्यारे को मारने के लिए उतावला हो रहा था। उसने म्यान से तलवार निकाली। उससे पूछा "बोल, तुझे कहा मारूँ?" उसने कापते स्वर मे कहा "जहा शरणागत मारे जाते है।" यह सुनकर वह अवाक् रह गया। पैरो से धरती खिसकने लगी। उसने मा की ओर देखा। माता ने कहा 'पुत्र! शरणागत को नही मारा जाता।"

वह बोला "मा! अपने क्रोध को कैसे सफल करूँ?"

माता ने कहा "पुत्र! क्रोध को सब जगह सफल नही करना चाहिए।" तलवार म्यान मे चली गई हत्यारे का सिर झुक गया।

क्रोध की विफलता के चार सूत्र है:

१ जहा क्रोध आए वहां से उठकर एकान्त मे

चले जाना।

२ मौन हो जाना।

३ किसी काम मे लग जाना।

४ एक दो क्षण के लिए श्वास को रोक देना।

एक सम्राट् का प्रधानमत्री बहुत बुद्धिमान् था। वह हर बात को गहराई से सोचता था। एक बार उस के पौत्र का विवाह था। उसने सम्राट को आमन्त्रित किया। सम्राट् उसके घर पर गया। उसका घर पुरुषो और स्त्रियो से भरा था। सम्राट् ने पूछा—"इतने लोग कौन है?" प्रधानमत्री ने कहा—"यह मेरा ही परिवार है और आपकी कृपा से इन सबकी रोटी एक ही चूल्हे मे पकती है।" सम्राट् का मन कौतूहल से भर गया। उसने पूछा—"यह कैसे सभव है? मेरे प्रिय प्रधानमत्री! इतने लोगो को तुमने कैसे स्नेह के धागे मे बाध रखा है?" प्रधानमत्री ने सिर हिलाते हुए कहा—"मैंने सब कुछ सहा है, मेरे प्रिय सम्राट्!"

सहिष्णुता दब्बूपन नही है। वह प्रेम की शक्ति का विकास है। जिसके हृदय मे पवित्र प्रेम की स्फुरणा नही होती वह सहिष्णु नही हो सकता। गगा गदे नालो को अपने मे मिला पवित्र बना लेती है। इसी प्रकार

सहिष्णुता भी अपने पारिवारिकजनो और पडोसियो की दुर्बलताओ व भूलो को सरसता मे वदल देती है।

विमर्श

१ हरिकेश को पक्ति से क्यो निकाला गया और उसने मन मे क्या सोचा ?

२. क्रोध को विफल करने के कौन-से उपाय है ?

३. वहुत वड़ा परिवार कैसे एक साथ रह सकता है ?

सहयोग का हाथ

एक किसान के चार पुत्र थे। उनमे बडे दो पुत्र बडे स्वार्थी थे। छोटे दो पुत्र बहुत उदार और मिलनसार। उनको परिवार के लोग बहुत चाहते थे। पडोसी भी उन्हे बहुत प्यार करते थे। बडे भाइयो को यह बहुत बुरा लगता था। उनके मन मे अपने छोटे भाइयो के प्रति ईर्ष्या हो गई। वे चारो बडे हो गए। किसान ने उनकी शादी कर दी।

किसान बहुत सपन्न था। वह अपना व्यवसाय चलाने मे दोनो छोटे पुत्रो से परामर्श करने लगा। दोनो बडे भाइयो को यह बात बहुत अखरने लगी। एक दिन दोनो भाई अपने पिता के पास जाकर बोले—'पिताजी ! हम चारो भाई आपके पुत्र हे और पुत्र होने के नाते चारो ही आपके लिए समान है। फिर उन दोनो के प्रति आपका स्नेह अधिक हे और हम दोनो के प्रति नही ह। यह पक्षपात आपमे नही होना चाहिए।'

पिता ने बडे प्रेम से उन्हे समझाया कि मेरे मन मे कोई पक्षपात नही हे। तुम भी मेरे प्रिय पुत्र हो।

पिता का उत्तर सुन उन्हे वडा सतोप हुआ। वे उठकर चले गए। दूसरे दिन उस गाव मे अचानक एक घटना घटित हो गई। उस किसान के दो पडोसी आपस में लड पडे। किसान गांव का मुखिया था। उसे दोनों मे समझौता कराना था। आसपास के लोग आए और दोनो मे समझौता कराने को कहा। किसान ने अपने दोनो छोटे पुत्रो को समझौता कराने के लिए भेज दिया। वे गए और दोनो पडोसियो का मनमुटाव दूर कर वापस चले आए। सारे गाव मे उनकी वाहवाही हो गई। दोनो वडे भाइयो को यह बात बहुत अखरी। वे उस बात को सहन नही कर सके। उन्होने अपनी ससुरालवालो से अपने पिता के पक्षपातपूर्ण व्यवहार की शिकायत की। अव तक जो बात पुत्र और पिता के बीच चल रही थी वह अब सारे गाव मे फैल गई। लोगो के लिए चर्चा का नया विषय बन गया। उनकी ससुरालवालो ने किसान के पास शिकायत-भरे पत्र भेजे।

किसान बहुत समझदार था। उसने अपना सतुलन नही खोया। उसने वातावरण को शान्त करने का उपाय खोज निकाला। दो-चार दिन बाद किसान ने एक भोज का आयोजन किया। उसमे गॉव के सभी

मुख्य व्यक्ति आमन्त्रित थे। चारो पुत्रो के ससुराल के लोगो को भी बुला भेजा। भोज के समय सभी लोग उपस्थित हुए। भोज का उद्देश्य कोई नही जानता था। किसान बडा आदमी था। उसने आमन्त्रण दिया था, इसलिए सब लोग आ गए। पर सब के मन मे उसका उद्देश्य जानने की आतुरता थी। भोजन परोस दिया गया। सब लोग भोजन के लिए बैठ गए।

किसान सामने की वेदी पर खडा होकर बोला —'प्रिय अतिथिगण! आप सबके मन मे इस भोज का उद्देश्य जानने की आतुरता है। आपकी आकृतियो को देख, यह मै जान पाया हू। मै इसका उद्देश्य प्रकट किये देता हू। मेरे दोनो बडे पुत्रो ने मुझ पर पक्षपात-पूण व्यवहार का आरोप लगाया है। उसका प्रायश्चित्त पाने के लिए मैने यह भोज आयोजित किया है। अब मेरे चारो पुत्र इस सामूहिक भोज मे उपस्थित हो रहे हैं। वे आप लोगो के साथ भोजन करेगे। किन्तु उन्हे एक विशेष अवस्था मे भोजन करना पडेगा। उनके हाथ खपचियो से बधे हुए होगे।'

किसान ने अपना वक्तव्य पूरा कर चारो पुत्रो के हाथ खपचियो से बाध दिए। चारो को दो कक्षो

मे भोजन करने के लिए बिठा दिया। कक्ष इस प्रकार बनाए गए थे कि उनको सर्व लोग देख रहे थे। पर एक कक्ष वाले दूसरे कक्ष वाले को परस्पर नही देख पा रहे थे। उनके सामने भोजन की सामग्री रख दी गई। प्रथम कक्ष मे पहले दो बडे भाई थे। वे दोनो बराबर बैठ गए। उन्होने कोर उठाया। पर हाथ खपचियो से बधे हुए थे। वे मुड नही सके। इसलिए उनका कोर हाथ मे ही रह गया। वह मुँह तक नही पहुँच पाया। लोग भोजन कर रहे थे और वे बैठे-बैठे लज्जित हो रहे थे। दूसरे कक्ष मे दोनो छोटे भाई थे। वे खपचियो से बधे हुए हाथो के साथ भोजन के लिए बैठ गए। दोनो आमने-सामने बैठे। रामू ने कोर उठाया और श्यामू के मुँह मे डाल दिया। श्यामू ने कोर उठाया और रामू के मुँह मे डाल दिया। उपस्थित जनता की करतल-ध्वनि के बीच् दोनो भोजन कर तृप्त हो गए।

आधा घटा तक यह नाटक होता रहा। उपस्थित जनता भोजन की अपेक्षा इसमे अधिक रस ले रही थी। इकतीस मिनट होते ही घंटी बजी और इस नाटक पर पटाक्षेप हो गया। चारो भाई उठकर आए और पिता के आदेशानुसार सामने की वेदी पर बैठ

गए ।

किसान ने सब लोगो के सामने दो बड़े पुत्रो से पूछा—'क्या तुम भोजन कर चुके ?' वे मंद स्वर मे बोले—'जी, नही ।' दोनो छोटे पुत्रो से वही प्रश्न पूछा तो उत्तर मिला—'जी, हा ।' किसान ने अतिथिगण से पूछा—'दो पुत्र भोजन नही कर पाए, क्या मैंने उन्हें भोजन करने से रोका ?' सब लोग एक साथ बोल उठे—'जी, नही ।'

'दो पुत्रो ने भोजन कर लिया, क्या मैने उन्हे खिलाया ?' फिर सब लोग एक साथ बोल उठे—'जी, नही ।'

किसान ने बडी गभीरता के साथ कहा—'मै पक्षपात का दोषी इसीलिए हूँ कि जिनमे सूझ-बूझ है और जिनका हाथ दूसरो का सहयोग करने के लिए आगे बढता है उन्हे मै अपना दायित्व सौपता हू ।'

अब सब लोग मौन थे । किसी के मुह पर पक्षपात की आवाज नही थी ।

विमर्श

१ किसान ने भोज का आयोजन क्यो किया ?
२ छोटे पुत्रो ने हाथ बंधे होने पर भी भोजन कैसे किया ?
३ छोटे भाइयो से बडे भाई ईर्ष्या क्यो करते थे ?



नैतिकता की परिभाषा

हमारी विचार-परिषद् प्रारम्भ हुई। उसमे अनेक लोग थे—कुछ जिज्ञासु और कुछ विद्वान्। कुछ आमन्त्रित और कुछ अनामन्त्रित। उनमे एक कवि थे। अवस्था से प्रौढ किन्तु आधुनिकता के रग मे रगे हुए। बचपन से उन्होने कठिनाइयो का सामना किया है। सामाजिक सम्पर्क मे उन्हे अनेक छलनाओ से प्रताडित होना पडा है। उनके मन मे अब विश्वास के लिए कोई अवकाश नही है। उनकी दृष्टि मे मनुष्य की प्रामाणिकता और सचाई का मात्र सैद्धान्तिक मूल्य है, आचारात्मक मूल्य नही है। नैतिकता अतीत की कहानी है। मैंने उनके विचार सुने और अपने विचार उनके सामने रखे। उन्होने वार्तालाप का प्रारम्भ इसी प्रश्न से किया—

क्या आप नैतिकता को शाश्वत मानते है ?

नही।

तो फिर नैतिकता की इतनी चर्चा क्यो की जाती है ? अशाश्वत को शाश्वत के आसन पर क्यो प्रतिष्ठित किया जाता है ?

· नैतिकता का आकार शाश्वत नही है, किन्तु उसका प्रयोजन शाश्वत है, इसलिए उसकी चर्चा से हम विरक्त नही हो सकते ।

: क्या पुराने जमाने की नैतिकता आज चल सकती है ?

पुराने जमाने की बुराइया आज चल सकती है तो फिर पुराने जमाने की नैतिकता क्यो नही चल सकती ? मैने प्रतिप्रश्न की भाषा मे पूछा क्या कोई ऐसी बुराई है, जो पुराने जमाने मे नही थी ?

मिलावट की बुराई पुराने जमाने मे कहा थी ?

दो हजार वर्ष पुराने ग्रन्थो मे मिलावट का उल्लेख मिलता है । उस समय के धर्माचार्य धार्मिक लोगों को मिलावट न करने का सकल्प देते थे ।

: रिश्वत की बुराई भी इतनी कहा थी ?

: मै इतनी-उतनी की बात नही करता, किन्तु रिश्वत की बुराई पुराने जमाने मे कम नही थी, यह मै कह सकता हूँ । आपने कौटलीय अर्थशास्त्र पढा है ?

· जी, नही ।

हमारी यह सबसे बडी कठिनाई है कि हम अपने अतीत के सम्पर्क मे नही है । जो अपने अतीत के

सम्पर्क में नहीं होता, उसका वर्तमान भी अपना नहीं होता। हमारा विचार-प्रवाह भारतीय की अपेक्षा अभारतीय अधिक है।

क्या बाहर से कुछ लेना बुरा है ?

मैं एक रूढिवादी की भाषा में नहीं दोहरा रहा हूँ कि बाहर से कुछ भी लेना बुरा है। मैं एक मुक्त चिंतक की भाषा में कहता हूं कि अपने स्वत्व से कटे हुए रहकर बाहर से लेना बुरा है।

यदि हम भारतीयता के सम्पर्क में होते तो अनैतिकता से निराश होकर नैतिकता के प्रति उदासीन नहीं होते।

हां, तो महामंत्री चाणक्य ने लिखा है—"जीभ के नीचे रखे हुए मधु या विष का आस्वाद न ले, क्या यह हो सकता है ?" 'नहीं हो सकता।" क्या यह हो सकता है कि राज्यकर्मचारी हो और रिश्वत न ले !

पानी की गहराई में तैरने वाली मछलियां पानी पीती हैं, उसका पता लगाना कठिन है। इसी प्रकार राज्यकर्मचारी रिश्वत लेता है, उसका पता लगाना कठिन है।

आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गति का पता लगाया जा सकता है, किन्तु प्रच्छन्नभाव से रिश्वत

लेने वाले राज्यकर्मचारी की गतिविधि का पता नही लगाया जा सकता ।

तो क्या अनैतिकता शाश्वत है ?

नैतिकता शाश्वत नही है तब फिर अनैतिकता शाश्वत कैसे होगी ?

. अनैतिकता का इतिहास हजारो वर्षों के अतीत में चला जाता है, तब उसे शाश्वत क्यो न माना जाए ?

. अनैतिकता और नैतिकता के हेतु शाश्वत है किन्तु उनके नाम, रूप और आकार शाश्वत नही है ।

. अनैतिकता के हेतु क्या है ?

मनुष्य की मौलिक मनोवृत्तिया और परिस्थितिया । मनुष्य मे संग्रह की मनोवृत्ति है । वह संग्रह के लिए न जाने कितने अनैतिक आचरण कर लेता है । मनुष्य मे सुख की मनोवृत्ति है । वह अपने सुख के लिए अकल्पित कार्य भी कर लेता है ।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि फिर कोई आदमी नैतिक बन ही नही सकता ।

हृदय, बुद्धि और मान्यताओ का परिष्कार हुए बिना कोई आदमी नैतिक नही बन सकता ।

. इनका परिष्कार कैसे किया जा सकता है ?

मामाजिक सहयोग की भावना तथा धार्मिक भावना का विकास होने पर स्वार्थ भावना परिष्कृत हो जाती है।

'दूसरो के लिए अपने स्वार्थ का त्याग करो' यह सामाजिकता का मुख्य सूत्र है। सामाजिक जीवन जीने वाला आदमी परार्थ या अन्याय को नही समझता, उसका स्वार्थ अन्तत विघटित हो जाता है।

'सत्य को पाने के लिए स्वार्थ का त्याग करो' यह धर्म का मुख्य सूत्र है। स्वार्थ को त्यागे विना कोई भी आदमी सत्य या परमार्थ को नही पा सकता।

इन दोनो भावनाओ के सस्कार स्वार्थ भावना मे परिष्कार ला देते हैं। इनके द्वारा अवाछनीय स्वार्थ का क्रमश परार्थीकरण और परमार्थीकरण हो जाता है।

क्या ये पुराने जमाने के सस्कार इस नए जमाने मे चल सकते है ?

क्या नया जमाना नैतिकता के विना चल सकता हे ?

क्या आज हमारे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मूल्यो मे परिवतन नही हुआ है ?

निश्चित ही हुआ हे।

: उनके मूल्य बदल जाने पर क्या नैतिक मूल्य नही बदलेगे ?

: क्यो नही बदलेगे ?

: चरित्र के आधार पर मनुष्य को महत्त्व मिलता था, इसलिए वह चरित्र पर सबसे अधिक ध्यान देता था। और इसीलिए उस जमाने में चरित्र का सर्वोपरि मूल्य था।

आज मनुष्य को महत्त्व मिलता है धन के आधार पर, इसलिए वह धन पर सब से अधिक ध्यान दे रहा है और इसीलिए वर्तमान युग में धन का सर्वोपरि मूल्य है।

जब चरित्र प्रधान था तब धन के अर्जन में नैतिकता का ध्यान रखना आवश्यक रहा होगा। आज धन प्रधान है तब उसके अर्जन मे नैतिकता का विचार क्या अनावश्यक नही है ?

: धन की शक्ति मै अस्वीकार नही करता हू। अतीत मे उसका मूल्य कम रहा यह स्वीकारना भी सरल नही है। धन का अपना मूल्य है, वह अतीत में भी रहा है और आज भी है। किन्तु सामाजिक व्यवहार कोरे धन से नही चलता। उसमें विश्वास क बहुत बड़ा योग है। विश्वास का प्रवाह सत्य से

निकलता है और अहिंसा मे विलीन हो जाता है।

क्या आप धन की शक्ति और उसके मूल्य को स्वीकारते है ?

जो यथार्थ है, उसे अस्वीकार कैसे किया जा सकता है ?

क्या धन का मूल्य निरपेक्ष है ?

जी, नही। निरपेक्ष मूल्य अंतिम सत्य का हो सकता है। धन का मूल्य वार्तमानिक है इसलिए वह सापेक्ष है।

धन का अपने आप मे कोई मूल्य नही है ?

अपने आप मे वस्तु का अस्तित्व होता है। मूल्य दूसरो के सम्पर्क द्वारा ही स्थापित होते है। घने जगल मे गुलाब का फूल खिला है। उसका अस्तित्व है, पर मूल्य नही है। सयोगवश वहा आदमी पहुँच जाते है, तब उसका मूल्य हो जाता है।

धन के मूल्य का आधार क्या है ?

आवश्यकता। धन द्वारा आवश्यकता की पूर्ति होती है इसलिए जितनी आवश्यकता होती है उतनी ही वस्तुए होती है तब धन का मूल्य कम होता है। आवश्यकताए अधिक होती है, वस्तुए कम होती है तब धन का मूल्य अधिक हो जाता है।

पूणता की ओर वढने का जो उपाय है वही कृत्रिमता से वचने का उपाय है।

पूर्णता की ओर वढने का क्या उपाय है ?

कृत्रिमता से वचने का जो उपाय है वही पूणता की ओर वढने का उपाय है।

आपके उत्तर में अन्योन्याश्रय दोप है।

कैसे ?

जैसे किसी घुडसवार से पथिक ने पूछा—यह घोडा किसका है ? उसने उत्तर दिया—जिसका मैं नौकर हूँ। पथिक ने फिर पूछा—तुम किसके नौकर हो ? उसने कहा—जिसका यह घोडा है। दोनो उत्तरो के वाद भी वह अपने प्रश्न का उत्तर नही पा सका। क्योकि उसकी भाषा मे कोई निष्कप नही था।

आप मुझसे निष्कप की भाषा चाहते ह ?

जी, हा !

तो सुनिए, कृत्रिमता से वचने का उपाय है सयम। और वही पूणता की ओर वढने का उपाय है।

सयम का अथ ?

अपने आवेगो, आकाक्षाओ और मान्यताओ पर नियत्रण पाने की क्षमता।

जिस आदमी मे नियत्रण या अस्वीकार करने की

क्षमता नही होती वह नैतिक नही वन सकता।

: तो क्या अनैतिक और नैतिक वनने में सामाजिक परिस्थितियों का हाथ नही है ?

. निश्चित है।

· क्या उनके सुधार की वात नैतिकता के सदर्भ मे प्राप्त नही है ?

: नही क्यो ? सामाजिक परिस्थितिया प्रतिकूल होती है तव व्यापक नैतिकता का कार्य कठिन वन जाता है। वे अनुकूल होती है तो व्यापक नैतिकता का कार्य सरल हो जाता है।

अच्छा मैं समझा, आप निमित्त को भी महत्व देते है।

: उपादान (मूल कारण) जितना नही, पर निमित्त का जो मूल्य है उसे कम कैसे किया जा सकता है?

: अनैतिकता का उपादान क्या है ?

: असयम अस्वीकार की क्षमता या अभाव।

: नैतिकता का उपादान क्या है ?

: संयम अस्वीकार की क्षमता का विकास।

: अनैतिकता का निमित्त क्या है ?

: सामाजिक परिस्थितियों की विपमता।

नैतिकता का निमित्त क्या है ?

सामाजिक परिस्थितियो की समानता ।

लबी चर्चा के बाद मैंने देखा उनकी कठिनाइयो को में समझ रहा था और मेरी भावना को वे समझ रहे थे । सचाई के बिन्दु पर हम एकत्र थे ।

विमश

१ "दूसरो के लिए अपने स्वाथ का त्याग करो—यह सामाजिकता का मुख्य सूत्र है," इसकी व्याख्या अपने शब्दो म मे करो।

२ क्या नतिकता आज के युग मे आवश्यक है ?

३ पूणता और कृत्रिमता मे अन्तर को स्पष्ट करते हुए बताइए कि सयम इन दोनो से क्या सम्बधित माना गया है ?

नैतिकता की मर्यादा

मै एक गोष्ठी मे प्रवचन कर रहा था। मेरे साम
अनेक बुद्धिजीवी लोग बैठे थे। उनमे कुछ लोग ध
पर विश्वास करते थे, और कुछ लोग धर्म को अन
वश्यक मानते थे। मेरे सामने एक प्रश्न था मै किन
निकट पहुँचूँ ? धार्मिको के निकट पहुचने के लिए ध
की प्रशसा करना जरूरी था और अधार्मिको के निक
मै धर्म की अवहेलना करके ही पहुच सकता था।

आज जो उपासना-प्रधान धर्म चल रहा है उस
मै आकृष्ट नही हूँ, इसलिए मै धर्म की प्रशसा न
कर सका। धर्म में मेरी प्रगाढ श्रद्धा है, इसलिए
उसकी अवहेलना भी नही कर सका। इस प्रकार मै
दोनो के निकट पहुँचने का अवसर खो दिया।

मैने धर्म की चर्चा छोड नैतिकता की चर्चा प्रारम्
की। मेरी समझ के अनुसार ऐसा कोई नही हो सक
जो धार्मिक हो और नैतिक न हो। मैने सोचा, नैति
कता की चर्चा करने का अर्थ है धर्म के परिणाम क
चर्चा करना। जिसकी अन्तरात्मा मे धर्म होगा उस
व्यवहार नैतिक होगा। धर्म को नही मानने वाले

सामाजिकता और राष्ट्रीयता मे विश्वास करते है। मैंने सोचा, नैतिकता की चर्चाए करने का अर्थ है सामाजिक और राष्ट्रीय निष्ठा के परिणाम की चर्चा करना। जिसमे सामाजिक और राष्ट्रीय निष्ठा होगी उसका व्यवहार नैतिक होगा। इस प्रकार मैं दोनो के निकट पहुचने मे सफल हो गया।

नैतिकता को वे भी आवश्यक मानते है जो धर्म को आवश्यक नही मानते। और जो धर्म को आवश्यक मानते है वे नैतिकता को अनावश्यक मान ही नही सकते। नैतिकता का कक्ष धर्म मे विश्वास करने वाले और नही करने वाले दोनो के लिए समान है। मुझे अनुभव हो रहा था कि प्रस्तुत चर्चा मे अधार्मिक लोग मेरा जितना साथ दे रहे है उतना धार्मिक लोग नही दे रहे है। उनका मत है कि पौराणिक बातो को सुनने मे जितना रस है उतना नैतिकता की रूखी चर्चा मे नही है। मैं उनके मत की उपेक्षा करके भी अपनी बात कहता गया। आधा घटे मे मैंने अपनी बात पूरी कर दी। सयोजक ने कहा—अब आधा घटे तक प्रश्न किए जा सकते है।

एक धार्मिक आदमी खडा हुआ। वह नैतिकता की बात से ऊब गया था। वह तेज स्वर मे बोला—

'मुनिजी ! आपको नैतिकता की बात करने मे कठिनाई क्या है ? आपके घर-बार नही है, न बाल-बच्चे है और न किसी का विवाह करना है। हम लोग जानते है, आज कितनी कठिनाइया है ! एक विवाह में तीस-चालीस हजार रुपए चाहिए। क्या नैतिकता से इतने रुपए आ सकते है ? इतने रुपए न आए तो क्या लडकियो का विवाह हो सकता है ? महाराज ! आप हमारी कठिनाइयो को नही समझ सकते।'

मैने उसकी आकृति को पढा। मुझे लगा, वह जो कह रहा है, हृदय की सचाई से कह रहा है। उसमें कोई कृत्रिमता नही है। उसका आवेग भी अस्वाभाविक नही है। क्योकि वह गृहस्थ की कठिनाइयो से काफी परेशान है।

मैने बहुत ही मृदु स्वर मे कहा 'मित्र ! तुम मुनि नही हो और मै गृहस्थ नही हूँ पर आदमी तो हम दोनो है। क्या आदमी आदमी को नही समझ सकता ? मेरे घर-बार नही है, बाल-बच्चे नही है और न मुझे किसी का विवाह करना है। फिर भी मेरे पास हृदय है। उसमे करुणा का प्रवाह है। मै ऐसा मानता हू कि आदमी कठिनाइयो के कारण अनैतिक नही बनता। उसके हृदय मे बहने वाला

करुणा का स्रोत जब सूख जाता है तब वह अनैतिक बनता है।'

वह धार्मिक आदमी मेरी बात समझने का प्रयत्न कर रहा था, इतने मे एक दूसरा स्वर सुनाई दिया। —'क्या गरीबी और सामाजिक कठिनाइयो से आदमी अनैतिक नही बनता ?'

मैंने और अधिक दृढता के साथ कहा—'नही बनता ।'

प्रश्न करने वाला ठीक मेरे सामने आकर बैठ गया। गोष्ठी मे एक हलचल-सी हो गई । वह अपनी बात मनवाने के लिए आतुर-सा दिखाई पड रहा था। वह अतीत के आवरण को चीरते हुए बोला—'क्या आपने यह नही पढा—

बुभुक्षित किं न करोति पापम ?

भूखा आदमी क्या पाप नही करता ?'

मैंने कहा—'पढा है ।'

'तो फिर आप कैसे कहते ह कि गरीबी के कारण आदमी अनैतिक नही बनता ?'

मने कहा—'मित्र ! मै इस पद का आशय समझता हू इसलिए कहता हू कि गरीबी से आदमी अनैतिक नही बनता ।'

'क्या आप मानते है गरीब आदमी अनैतिक नही है ?'

मैने प्रतिप्रश्न की भाषा मे कहा 'क्या आप मानते है, धनी आदमी अनैतिक नहीं है ?'

'मै यह कब कहता हूँ कि धनी आदमी अनैतिक नही होते।'

'मै भी यह कब कहता हूं कि गरीब आदमी अनैतिक नही होते।'

'मेरे मतानुसार अनुपातत: गरीब आदमी अधिक सख्या मे अनैतिक है।'

'गरीबो की संख्या अधिक है, इसलिए यह हो सकता है। किन्तु अनैतिकता की मात्रा में गरीब धनिको से आगे नही है।'

'क्या आप यह कहना चाहते है कि आदमी धन से अनैतिक बनता है ?'

'नही।'

'आप गरीबी को भी अनैतिकता का साधन नही मानते, धन को भी उसका साधन नही मानते, फिर क्या मानते है ?'

'मै अपना मत प्रकट करूं ?'

'जी, हां।'

को स्वीकार कर लेता कि जहा गरीवी होती है वहा अनैतिकता होती ह । किन्तु सव गरीव अनैतिक नही ह । इसलिए में मानता हू कि गरीवी और अनैतिकता मे प्रत्यक्ष गठवन्धन नही है ।

सव के सव धनी भी अनैतिक नही ह इसलिए धन और अनैतिकता मे भी प्रत्यक्ष गठव वन दिखाई नही दे रहा हे ।'

'अनैतिकता का गठवन्धन किसके साथ है ?'

'क्रूरता के साथ ।' मैंने इसको विस्तार देते हुए कहा—'जिसके हृदय मे क्रूरता ह वह फिर गरीव हो या वनी, अनैतिक आदमी होगा ।'

'जिसके हृदय मे करुणा है, फिर वह गरीव हो या धनी, नैतिक आदमी होगा ।

'आप यह कहना चाहते ह कि अनैतिकता का सावन क्रूरता हे और नैतिकता का सावन करुणा हे ।'

'जी, हा ।'

'आप घूम-फिरकर मेरे विन्दु पर ही पहुचे न ?'

'कैसे ?'

'गरीवी से ही क्रूरता वढती हे, यही तो मेरा आशय था ।'

'म अव भी आपके आशय से पूणत सहमत होने

मे असमर्थ हूँ। गरीबी से भी क्रूरता बढती है। किन्तु जितनी क्रूरता धन की लालसा से बढती है उतनी गरीबी से नही बढती।'

दूसरे प्रश्नकर्ता महोदय अपनी उलझन को समेटने मे लगे, इतने मे तीसरा स्वर सुनाई दिया 'एक राज्य-कर्मचारी पाच रुपए की रिश्वत लेता है, और रिश्वत देने वाले का काम कर देता है, इसमे क्रूरता क्या है ?'

पास ही बैठे उसके मित्र ने उसका समर्थन कर दिया। उसने कहा 'इसमे सामने वाले के हित का विघटन नही है, इसलिए इसमे कोई क्रूरता नही है।'

अब सब लोग मेरे सामने देख रहे थे। वे यह जानने को उत्सुक हो रहे थे कि मै उनके तर्क को स्वीकार करता हू या अस्वीकार ? मैने उन दोनो मित्रो के तर्क को अस्वीकार कर दिया। मैने कहा 'उस कार्य मे क्रूरता नही है, ऐसा मै नहीं मानता।'

मैने प्रश्नकर्ता महोदय से पूछा 'उसी कर्मचारी से दूसरा आदमी काम कराने आता है और उसे पाच रुपया नही देता है, क्या वह उसका काम उतनी तत्परता से करेगा ?'

रुकते स्वर में कहा 'सम्भवत नही करेगा।'

'रिश्वत देने वाले की अपेक्षा रिश्वत नही देने वाले का काम अधिक आवश्यक है। वह बेचारा गरीब है। और यदि उसका काम नही होता है तो उसका घर लुटता है। फिर भी रिश्वत लेने वाला रिश्वत लिए विना उसका काम तत्परता से नही करेगा। इसका अर्थ क्या हुआ ?

उसके मन मे मनुष्य के प्रति करुणा नही है। यदि मनुष्य के प्रति करुणा हो तो वह प्राथमिकता उसको देगा जिसे उसकी जरूरत है। प्राथमिकता रिश्वत देने वाले को मिलती है, इसका अर्थ है उसका व्यवहार मूलत करुणापूर्ण नही है। जहा स्वार्थ सधता है वहा क्रूरता पर करुणा का आवरण आ जाता है।'

गोष्ठी मे फिर एक वार सन्नाटा-सा छा गया। सभी लोग चिन्तन की गहराई मे डुवकिया लेने लगे। मुझे लगा मेरी स्थापना अब निर्विवाद है। पर मैंने इस सत्य को भुला दिया कि चिन्तन के जगत मे निर्विवाद कुछ हो ही नही सकता। उस शान्त सागर मे से फिर एक प्रश्न उभर आया—

'क्या किसी को अपना स्वार्थ साधने का अधिकार नही है ?'

'नही क्यो ? इस अधिकार को दुनिया की कोई

भी शक्ति समाप्त नही कर सकती।'

'तो फिर आप उसे क्रूरता क्यो कहते है?"

'व्यक्तिगत स्वार्थ साधने को मै क्रूरता कब कहता हू? दूसरो के सामान्य हितो की उपेक्षा कर व्यक्तिगत स्वार्थ साधना मेरी दृष्टि में क्रूरता है। जिसके मन मे करुणा होती है, वह दूसरो के हितो का विघटन होते देख व्यक्तिगत स्वार्थ को ठुकरा देता है।

'श्रीमद्राजचन्द्र जवाहिरात का धन्धा करते थे। एक व्यापारी के साथ उनका सौदा किया हुआ था। अभी माल नही आया था, जवाहिरात के भाव बहुत तेज हो गए। उससे उस व्यापारी को पचास हजार का घाटा हो रहा था। वह बेचारा बहुत चिन्तित हो गया। श्रीमद्राजचन्द्र उसके पास गए। उससे सौदे की चिट्ठी देने को कहा। उस व्यापारी ने कहा—आप चिट्ठी लेकर क्या करोगे? मै आपका पूरा दाम चुकाने का प्रयत्न करूगा। श्रीमद्राजचन्द्र ने काफी आग्रह किया तब उसने वह चिट्ठी लाकर उनके हाथ मे दे दी। श्रीमद्राजचन्द्र ने उस चिट्ठी को फाड़ते हुए कहा राजचन्द्र दूध पी सकता है, किसी का खून नही पी सकता।'

यह था करुणा का प्रवाह, जो स्वार्थ-सिद्धि और

स्वाथ-विसर्जन इन दोनो तटो के बीच बहता था। श्रीमद्राजचन्द्र की करुणा ने गोष्ठी सदस्यो के मन करुणा से भर दिए। अब सभी सदस्यो ने मेरी स्थापना को स्वीकृति दे दी कि जिसका हृदय करुणा से ओतप्रोत होता है वही नैतिक हो सकता है।

विमर्श

१ नैतिकता की मर्यादा करुणा का विकास है", इस कथन का स्पष्ट कीजिए।
२ क्रूरता स ही अनतिकता पनपती है—आप इस विचार से कहा तक सहमत हैं?
३ नतिकता और धार्मिकता म क्या सम्ब ध ह? स्पष्टकरो।

नैतिकता का आधार

एक भाई विदेश-यात्रा से लौटा है। उसने चार महीने हिन्दुस्तान से बाहर बिताए है। वह दुनिया के हर कोने मे घूमा है। उसने विदेशी सभ्यता, सस्कृति, आचार और व्यवहार का गहराई से अध्ययन किया है। कुछ देशो ने भौतिक विज्ञान के क्षेत्र मे बहुत प्रगति की है। जैसे सपदा का विकास हुआ है वैसे जीवन का स्तर भी ऊचा हुआ है। वहा की युवक पीढ़ी मे धर्म के प्रति बहुत आकर्षण नही है, फिर भी उनके दैनिक व्यवहार मे प्रामाणिकता है, सचाई है। उस भाई के मन मे एक प्रश्न उठ रहा है कि हिन्दुस्तान धर्म-प्रधान देश है इतने मदिर, इतने पुजारी, इतने साधु-सत और इतने धर्मोपदेशक। फिर भी हमारा दैनिक व्यवहार अपेक्षाकृत कम प्रामाणिक है, यह क्यो ?

वह मुझसे इस बात का उत्तर चाहता है। मै बडी उलझन में हूँ। उस भाई को क्या उत्तर दूँ ? मै हिन्दुस्तान की गरिमा को भी कम करना नही चाहता और न धर्म की गरिमा को भी कम करना चाहता

हूँ। कि तु उस भ्रान्ति को तोडना चाहता हू, जो यथाथ पर पर्दा डाले हुए हे।

हमने एक धारणा वना रखी है कि हि दुस्तान धम-प्रधान देश है, कि तु वास्तव मे वह धम-प्रधान है, इसकी कसौटी हमने कब की है ?

हिन्दुस्तान धर्मो की जन्मभूमि है। उसमे धम के महान् विचार फले-फूले हैं। तकशास्त्र और दशन-शास्त्र की दीघकालीन व्यवस्थित परम्परा है। इस पुण्यभूमि मे वडे-वडे धर्माचाय पैदा हुए है। लगभग सभी धर्माचार्यो ने धम की विशद व्याख्या की है।

हमारी धार्मिक धारणा के दो अग ह—पूजा-उपासना और आचरण-शुद्धि। हिन्दुस्तानी जनता का झुकाव जितना पूजा-उपासना की ओर है उतना आचरण शुद्धि की ओर नही है। पूजा-उपासना का माग सरल है। आचरण-शुद्धि का माग कठोर है। सरल से मेरा काम वन जाए तो मैं कठोर माग पर किसलिए चलू ?

हमारे आचार्यों ने सोचा होगा कि पूजा-उपासना करते-करते आचरण शुद्धि अपने आप हो जाएगी। किन्तु ऐसा हुआ नही। धार्मिक लाग भगवान को भी ठगने लग गए। उन्होने मान लिया कि हम गृहस्थ है,

इसलिए बुराइयो को छोड़ नही सकते। भगवान की उपासना करने से हमारे सब पाप धुल जाएगे। वे इसी धारणा के आधार पर अप्रामाणिकता और पूजा-उपासना को साथ-साथ चला रहे है।

यदि हमारे धर्माचार्य यह निर्देश दे गए होते कि जिसका जीवन-व्यवहार नैतिक नही है उसे भगवान् की पूजा-उपासना का अधिकार नही है, तो सम्भवत. आज से उल्टी स्थिति होती, प्रामाणिकता का स्थान पहला होता, पूजा-उपासना का स्थान दूसरा होता।

हिन्दुस्तान धर्म-प्रधान देश अवश्य है पर वह पूजा-उपासनामय धर्म का देश है। इसलिए आप हमारी धार्मिकता से जिस बात की अपेक्षा रखते है, वह पूरी कैसे होगी ?

पता नही मैने उस भाई के प्रश्न का उत्तर दिया या नही दिया। मैने अपने मन की अनुभूति उसके सामने रख दी। वह बहुत समझदार था, इसलिए उसने मेरी अनुभूति की अभिव्यक्ति को ही अपना उत्तर मान लिया।

उस भाई ने अपनी जिज्ञासा का एक तार और उधेड़ा। वह बोला विदेशो मे जो व्यवहार की सचाई है, उसका कारण क्या है ?

म विदेशो मे नही गया हू। वह वहा होकर आया है। मै परोक्षदर्शी हूँ, वह प्रत्यक्षदर्शी है। इस प्रश्न का उत्तर उससे मुझे पाना चाहिए, पर वह मुझसे पाना चाहता है। यह बात उल्टी है, पर इस दुनिया मे उल्टी बाते भी बहुत चलती हे। मैने उसका अनुरोध स्वीकार किया और उस प्रश्न का उत्तर देने लगा।

मैने कहा—धम की धारणा व्यक्तिवादी है। समाज का आधार सामुदायिकता है। हिन्दुस्तान मे धम को इतना महत्व मिला कि यहा समुदाय-निष्ठा पनप नही सकी। धम और समाज घुले-मिले-से रहे। फलत सामाजिक जीवन मे भी व्यक्तिवादी मनोवृत्ति घर कर गई।

धम उपासना-प्रधान रहा, इसलिए उससे नैतिकता फलित नही हुई और सामाजिक-निष्ठा को विकसित होने का अवसर नही मिला, इसलिए उससे नैतिकता के फलित होने का प्रश्न ही नही उठता।

विदेशी लोगो ने धम को सामाजिक जीवन से अलग रखा है। उन्होने सामाजिक और राष्ट्रीय निष्ठा को स्वतत्र रूप मे विकसित किया है। उनकी नैतिकता का आधार वह सामाजिक या राष्ट्रीय निष्ठा है।

लदन के उपनगर की घटना है 'एक दिन ग्वाले की लडकी बहुत उदास थी। उसके घर पर एक विदेशी रहता था। उसने उसकी उदासी का कारण पूछा। उसने कहा 'ग्राहको को देने के लिए आज मेरे पास दूध कम है, यही मेरी उदासी का कारण है।' उसने तत्काल परामर्श दे दिया। वह बोला 'इसमे इतनी उदासी की क्या बात है? दूध मे थोडा पानी मिला दो। वह पूरा हो जाएगा।' उसकी बात सुनते ही लडकी क्रुद्ध हो उठी। वह आवेशपूर्ण भाषा मे बोली "आप मेरे घर से चले जाइए। क्या मै दूध मे पानी मिलाकर अपने राष्ट्र के साथ धोखा करूँ? क्या मै अपने राष्ट्र के नागरिको के स्वास्थ्य को खराब करूँ? आपने मुझे बहुत गलत परामर्श दिया है। इसलिए मै फिर कहती हूँ कि आप मेरे घर से चले जाइए।'

इस नैतिकता के पीछे राष्ट्रीय निष्ठा बोल रही है। बेल किसी के सहारे ऊपर चढती है। नैतिकता का विकास भी निष्ठा के सहारे होता है। आदमी की अपने परिवार के प्रति निष्ठा होती है, इसलिए वह उसके साथ अनैतिक व्यवहार नही करता। वह पडोसी के साथ अनैतिक व्यवहार कर सकता है क्योकि उसके साथ उसका अपनत्व नही होता-और जहाँ

अपनत्व नही होता वहा निष्ठा नही पनपती ।

भारतीय समाजशास्त्रियो ने निष्ठा को व्यापक बनाने का दृष्टिकोण दिया था, पर वह उचित मात्रा मे विकसित नही हो सका । महामन्त्री चाणक्य ने लिखा है—'जहा कुल का प्रश्न हो वहा एक की उपेक्षा कर देनी चाहिए । जहा गाव का प्रश्न हो वहा कुल की उपेक्षा कर देनी चाहिए । जहा राष्ट्र का प्रश्न हो वहा गाव की उपेक्षा कर देनी चाहिए ।'

इस चिन्तन मे निष्ठा के प्रवाह को सामुदायिकता की ओर मोडने का प्रयत्न है । किन्तु व्यक्तिवादी धारा के वेग ने इस प्रयत्न को सफल नही होने दिया ।

व्यक्ति से कुल बडा है, कुल से गाव और गाव से राष्ट्र । जो राष्ट्र के प्रति ईमानदार होता है वह गाव और कुल के प्रति सहज ही ईमानदार हो जाता है । जो आदमी केवल अपने कुल के प्रति ईमानदार होता है वह गाव और राष्ट्र के प्रति ईमानदार नही हो सकता ।

मैने प्रश्न का उत्तर क्या दिया, एक व्याख्यान-सा दे दिया । पर मुझे प्रसन्नता है कि प्रश्नकर्ता का धैर्य विचलित नही हुआ । उसने मेरी बात का समर्थन करते हुए कहा—मै आपकी बात से शत प्रतिशत सह-

मत हूं कि निष्ठा का क्षेत्र व्यापक होता है तो व्यवहार को अनैतिक होने का अवकाश नही मिलता और निष्ठा का क्षेत्र छोटा होता है तो अनैतिकता को पनपने का अवकाश मिल जाता है। पर प्रश्न यह है कि राष्ट्रीय निष्ठा को विकसित कैसे किया जाए ?

इसका समाधान देना कठिन है, फिर भी मैने वह कुछ दिया। मैने कहा आदमी अनुभव करता है कि परिवार का हित मेरा हित है। इस अनुभूति के कारण ही वह परिवार को अपना मानता है और उसके प्रति समर्पित रहता है।

राष्ट्र का हित मेरा हित है इस अनुभूति के अभाव मे न राष्ट्र के प्रति अपनत्व होता है और न समर्पण। जिसके प्रति अपनत्व और समर्पण नही होता उसके प्रति आदमी पूरी ईमानदारी कैसे बरत सकता है ?

अपनत्व की सीमा हित और अहित की अनुभूति होने पर ही विस्तीर्ण हो सकती है। परिवार का हित सधे विना मेरा व्यक्तिगत हित भी नही सधता, यह एक सहज प्रेरणा है, जो व्यक्ति को परिवार के प्रति ईमानदार रखती है। इसी प्रकार राष्ट्र का हित सधे बिना मेरा व्यक्तिगत हित भी नही सधता, इस सचाई

का उसे प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहिए। वैसा होने पर राष्ट्रीय निष्ठा अपने आप विकसित हो जाती है।

प्रश्नकर्ता ने चर्चा को फिर आगे बढाने का प्रयत्न किया। उसकी कठिनाई अब भी सुलझ नही पायी थी। उनकी कठिनाई यह है कि राष्ट्रीय हित को अपना हित मानने की अनुभूति कैसे कराई जाए ?

मेरी दृष्टि घटी की सूई पर जा टिकी। समय की मर्यादा सम्पन्न हो चुकी थी। मैंने उनके प्रश्न का उत्तर देने के लिए अपनी असमर्थता प्रकट की और बातचीत का सिलसिला वही समाप्त हो गया।

विमर्श

१ यद्यपि हमारा देश धर्म प्रधान है, परन्तु हमारा दैनिक व्यवहार कम प्रामाणिक क्या है ?

२ धर्म के दो अंग कौन से हैं ? उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

३ धर्म के व्यक्तिवाद और समाज की सामुदायिकता पर प्रकाश डालो।

४ राष्ट्रीय हित को अपना हित कैसे माना जा सकता है ?

नीति और नीति

एक डाक्टर मेरा मित्र है। वह अपने कर्तव्य के प्रति समर्पित है। उसके सामने बीमारियो और औषधियो के चित्र उभरते रहते है। वह जहा कही भी जाता है, इस विषय में चर्चा करता रहता है। एक दिन मेरे पास आकर बैठ गया और सक्रामक बीमारियो की चर्चा करने लगा। जब उसने अपनी बात पूरी कर ली तब मैने कहा 'केवल बीमारिया ही सक्रामक नही होती, विचार भी संक्रामक होते है। एक आदमी के विचार अच्छे होते है तो दूसरे के मन मे विश्वास पैदा होता है। वे खराब होते है तब दूसरे के मन में सदेह पैदा होता है।'

डाक्टर मानसिक चिकित्सा में दक्ष था। इसलिए वह मेरी बात को समझ रहा था। उसके दो-चार मित्र और बैठे थे। वे मेरी बात का हार्द पकड नही पाए। उन्होने प्रश्नो का सिलसिला शुरू कर दिया। एक प्रश्न था 'एक व्यक्ति के विचारो का असर दूसरे व्यक्ति के मन पर कैसे होगा ?'

मैने कहा –"चिन्तन के परमाणु वायुमण्डल मे

व्याप्त होते ह। वे दूर-दूर तक अपना प्रभाव डालते है। सबचित व्यक्ति पर उनका प्रभाव सीधा और शीघ्र होता है।"

"एक समय की बात है—एक बुढिया सिर पर गठरी लिए जा रही थी। पीछे से एक युवक आया और बुढिया के साथ हो गया। दोना को एक ही गाव जाना था, इसलिए दोनो साथ-साथ चलने लगे। कुछ आगे जाकर युवक ने कहा—'दादी! तुम थक जाओगी, थोडे समय के लिए यह गठरी मुझे दे दो।' बुढिया ने धन्यवाद के साथ उसे गठरी दे दी।

आधे घटे बाद बुढिया बोली—'बेटा! तुम थक जाओगे। लाओ, गठरी मुझे दे दो।' युवक ने गठरी बुढिया को दे दी। फिर दोनो चलने लगे। थोडी देर चलने के बाद युवक ने मन ही मन सोचा—'गठरी मे रुपयो की थैली है। मेरे पास यह आ ही गई थी। यदि मैं इसे लेकर भाग जाता तो यह बुढिया क्या कर लेती?"

उसने बुढिया के फिर कहा—'दादी! लाओ, गठरी मुझे दे दो।'

'नही, बेटा! अब नही दूगी!'

'क्यो नही दोगी दादी?'

'बेटा ! जो तुझे कह गया वह मुझे भी कह गया ।'

अच्छे-बुरे विचारों का प्रभाव मनुष्य पर ही नहीं, प्रकृति पर भी हो जाता है। पुराने जमाने की घटना है। एक राजा जनता का सुख-दुःख जानने के लिए वेश बदलकर घूम रहा था। शहर में घूमता-घूमता वह खेतों में पहुंच गया। उसे प्यास लग आयी। सामने ईख का खेत था। वह वहां चला गया। किसान की पत्नी ने बड़ी आवभगत की। उसने ईख का रस पीने की इच्छा प्रकट की। किसान की पत्नी ने एक ईख हाथ में लिया, उसे पेरा और गिलास भर उसके हाथ में दे दिया।

राजा ने ईख का रस बहुत बार पिया होगा पर आज उसे जितना मीठा लगा, उतना पहले कभी नहीं लगा। राजा ने मन-ही-मन सोचा 'ओह ! कितना मीठा है ! इस पर लगान बहुत कम है। इतनी मीठी चीज पर लगान इतना कम क्यों होना चाहिए ?' उसने सोचा 'कल मैं लगान दूनी कर दूंगा।'

वह बोला 'मैया ! तुम्हारा ईख का रस इतना मीठा है कि उससे प्यास बुझी नहीं, और उभर गई। कृपया एक गिलास और '

बुढिया ने ईख हाथ मे लिया और पेरा, पर गिलास भरा नही। दूसरा पेरा जब जाकर गिलास भरा। उसने कहा—'मैया ! यह क्या ? पहली बार एक ही ईख से गिलास भर गया था और इस बार दो ईख पेरने पर वह भरा।' किसान की पत्नी ने कहा—'भई ! मेरे राजा की नीति खराब हो गई है। वह लगान दूना करने की बात सोच रहा है, इसलिए ऐसा हुआ है।'

राजा अवाक् रह गया। उसे अपने चिन्तन पर अनुताप हुआ। उसने सोचा—'बेचारे किसान कितना परिश्रम कर खेती करते है। मैंने उनके परिश्रम का मूल्य नही आका। अपना कोष भरने की धुन मेरे सिर पर सवार हो गई। मुझे इन किसानो के श्रम का अनुचित लाभ क्यो उठाना चाहिए ? मैं कल राजसभा मे जाकर ईख पर लगने वाले लगान को आधा कर दूगा।' राजा ने अपने मन मे पक्का निश्चय कर लिया।

'मैया ! मैं आज तुम्हे कष्ट दे रहा हूँ, माफ करना। अभी प्यास बुझी नही है। एक गिलास और चाहता हू।'

'जितना चाहो उतना पीओ, इसमे सकोच की क्या बात है ! यह पथिको के भाग का है। केवल

हमारा ही नही है।' किसान की पत्नी ने बडी तत्परता से ईख उठाया और उसे पेरना प्रारम्भ किया। आधा ईख ही पेरा कि गिलास भर गया।

राजा आश्चर्य की मुद्रा मे बोल उठा 'यह क्या मैया! इस बार आधे ईख से ही गिलास भर गया।'

वह बोली 'भई! मेरे राजा की नीति पहले से भी अच्छी हो गई है। वह लगान आधा करने की बात सोच रहा है, इसलिए ऐसा हुआ है।'

राजा पहले भी बहुत बार घूमा था। पर उसने इतना सुन्दर पाठ पहले कभी नही पढा। अब उसे अपनी नीति का प्रतिबिम्ब प्रजा के जीवन पर स्पष्ट दिखाई देने लग गया।

विमर्श

१. विचार-सक्रमण के प्रभावो को स्पष्ट कीजिए।

२. नीति और विचारो के सम्बन्धो पर प्रकाश डालिए।

अपेक्षा का धागा

मेरे एक साहित्यकार मित्र ने कहा—'पानी के बिना जैसे मछली का अस्तित्व नही है, वैसे ही समाज के बिना व्यक्ति का अस्तित्व नही है।'

मैं उनसे पहले अपने विचार प्रस्तुत कर चुका था। मैंने कहा था—'व्यक्ति वास्तविकता है और समाज उपयोगिता।' वे समाज की वास्तविकता का समर्थन कर रहे थे। उसी सदर्भ मे उन्होंने ऊपर का वाक्य कहा था।

लम्बे समय के चिन्तन-मन्थन के बाद भी 'व्यक्ति वास्तविकता और समाज उपयोगिता है' इस विचार को बदलने की मुझे प्रेरणा नही मिली है।

समाज उपयोगिता है—इस चिन्तन का विकास हुआ है। व्यक्ति का व्यक्तित्व और कृतित्व सामाजिक जीवन मे ही प्रस्फुटित होता है। इसलिए समाज से अलग कर व्यक्ति के व्यक्तित्व और कृतित्व की व्याख्या नही की जा सकती। व्यक्तियो के बिना समाज की सरचना नही हो सकती। वस्तुत व्यक्ति और समाज सापेक्षता के सूत्र से बधे हुए है।

एक अंधा दूसरे गांव जा रहा था। उसने गली के मोड पर आकर उस गांव का रास्ता पूछा। जिससे रास्ता पूछा वह पंगु था। उसने कहा 'वहा मुझे भी जाना है।' अंधे ने कहा 'तुम भी चलो।' पंगु बोला 'मैं पैरो से चल नही सकता।' अंधे ने दो मिनट सोच-कर पंगु को अपने कंधे पर बिठा लिया। पंगु मार्ग बताता रहा और अंधा चलता रहा।

पैर देख नही सकते, आँखे चल नही सकती। एक की अपेक्षा दूसरे ने पूरी की, इसलिए अंधा और पंगु दोनो अपने-अपने लक्ष्य तक पहुच गए। यह सापेक्षता ही सामाजिकता या राष्ट्रीयता है।

एक बार की घटना है हाथ, पैर, जीभ आदि सब अवयव पेट के विरोध मे संगठित हो गए। सबका आरोप था कि अन्य सारे अवयव काम करते है, पेट कोई काम नही करता। सबने असहयोग का निश्चय कर अपना-अपना काम बन्द कर दिया। पेट ने उन्हे बहुत समझाया। उसने कहा 'तुम्हे मेरी कोई अपेक्षा नही होगी पर मुझे तुम्हारी अपेक्षा है।' वे अपने आग्रह पर अडे हुए थे, इसलिए उन्होंने सुना-अनसुना कर दिया।

एक दिन बीता, हाथ-पैर शिथिल होने लग गए। जीभ का स्वाद बदल गया। दो दिन बीते। चलने की

शक्ति कम होने लगी। तीसरे दिन शरीर का हर अवयव ढीला हो गया। सब मिले। तब मस्तिष्क ने कहा—'मैंने पहले ही समझाया था कि पेट से निरपेक्ष होकर हम जी नही सकते। हाथ-पैर से श्रम करना। पेट की अपेक्षा है तो उससे शक्ति प्राप्त करना हाथ-पैर की अपेक्षा है।' यह अपेक्षा ही सामाजिकता या राष्ट्रीयता है।

एक पौराणिक कहानी है—सुभूम नाम का चक्रवर्ती था। उसके रथ को सोलह हजार देव उठाते थे। एक बार वह समुद्र पार जा रहा था। एक देव ने सोचा—यदि मैं सहारा नही देता हू तो उससे क्या अनर्थ होने वाला है। शेष पन्द्रह हजार नौ सौ निन्यानवे देव इस रथ को उठा ही रह ह। दूसरे ने भी ऐसा ही सोचा और तीसरे ने भी ऐसा ही सोचा। कोई हवा ही ऐसी चली कि सबने वही सोचा जो पहले ने सोचा था। सबने एक ही साथ रथ को छोडा और वह समुद्र मे जा गिरा।

राष्ट्र का रथ सभी नागरिको द्वारा वहन किया जाता है। एक नागरिक उससे निरपेक्ष होकर चलने की बात सोच सकता है तो फिर दूसरा क्यो नही सोच सकता है? और यदि सभी नागरिक निरपेक्ष हो

जाते है तो राष्ट्र के रथ का ध्वस हो जाता है। राष्ट्र के बिना नागरिक की वही गति होती है, जो जल के बिना मछली की होती है। मछली को जीने के लिए जल की अपेक्षा है, वैसे ही हर नागरिक को समाज या राष्ट्र की अपेक्षा है।

तिनका अकेला रहकर कूडा-करकट बनता है और वही दूसरो से जुडकर बुहारी के रूप मे बदल जाता है। फिर उसका उपयोग सफाई के लिए होता है।

एक धागा तत्काल टूट जाता है। जब अनेक धागे परस्पर समवेत हो जाते है तब उनकी क्षमता बढ जाती है।

बुहारी का हर तिनका और कपडे का हर धागा परस्पर सापेक्ष होता है, इसीलिए उनमे क्षमता का विकास होता है। व्यक्ति अपने आप मे निरपेक्ष हो सकता है किन्तु विस्तार मे निरपेक्ष नही हो सकता। खेती को खाने वाले की अपेक्षा है और खाने वालो को खेती की अपेक्षा है।

साक्षात् अनुभव मे आने वाली अपेक्षा के प्रति आदमी अप्रामाणिक नही होता। परोक्षतः अनुभूत होने वाली अपेक्षा के प्रति वह अप्रामाणिक हो भी जाता है पर उसका परिणाम उसके लिए अच्छा नही

होता।

राष्ट्र के किसी भी अंग में सड़ान होती है तो उसकी दुर्गंध फैलते-फैलते सब जगह फैल जाती है। पैर में हुई सड़ान के परिणाम से कथा कैसे बच सकता है? भला इसी में है कि राष्ट्र के किसी भी अंग में सड़ान पैदा न हो। सापेक्षता का विकास होने पर ही ऐसा हो सकता है।

हर व्यक्ति का भाग्य राष्ट्रदेवता के भाग्य के साथ जुड़ा हुआ है। उसके भाग्य की लिपि को पोंछने वाला जाने-अनजाने अपने ही भाग्य की लिपि को पोंछता है।

विमर्श

१ अपेक्षा से आप क्या अर्थ समझते हैं? क्या प्रत्येक नागरिक को राष्ट्र की अपेक्षा है?

२ 'व्यक्ति वास्तविकता है और समाज उपयोगिता।'—इस कथन का स्पष्टीकरण कीजिए।

कर्तव्य-बोध

एक युवक अभी-अभी समाजशास्त्र मे आचार्य की परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर आया है। वह किसी कार्य की खोज मे है । उसने पूछा 'मेरा कर्तव्य क्या है ?'

मैंने कहा मनुष्य बनना ।

: क्या मै मनुष्य नही हूं ?

. मै यह कैसे कहू कि तुम मनुष्य नही हो ? दो हाथ, दो पैर और पूरा का पूरा आकार मनुष्य का है। फिर तुम तो बहुत पढे-लिखे हो । तुम्हारा बौद्धिक विकास भी अच्छा हुआ है ।

तो फिर मनुष्य बनना मेरा कर्तव्य कैसे होगा ?

: मैने मनुष्य बनने का जो अर्थ समझा है, उस अर्थ में शायद तुम पूरे मनुष्य नही भी हो। इस दृष्टि से मैंने मनुष्य बनने की बात कही थी ।

: क्या आप मुझे बता सकेंगे कि आप मनुष्य किसे मानते है ?

. मेरी परिभाषा के अनुसार मनुष्य वह होता है जिसके मन में क्रूरता नही होती ।

क्या क्रूरता होने से मनुष्य की मनुष्यता समाप्त हो जाएगी ?

हां, मेरा अनुभव यही बताता है।

तो फिर वह क्या होगा ?

जंगली पशु।

जंगली पशु क्रूर होता है, इसलिए वह समाज बनाकर नहीं जी सकता। मनुष्य ने क्रूरता छोड़ी, अहिंसा का विकास किया, फलत वह समाज बनाकर रहने में सफल हुआ।

आपकी दृष्टि में समाज क्या है ?

अहिंसा।

अहिंसा समाज कैसे ?

व्यक्ति अन्त तक व्यक्ति ही रहता है। कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को विलीन कर समाज नहीं बनता। अहिंसा का धागा विच्छिन्न व्यक्ति को अविच्छिन्न बना देता है। व्यक्ति समाज में बदल जाता है।

क्या समाज का अर्थ स्वार्थों का समझौता नहीं है ?

मेरी दृष्टि में नहीं है।

यह कैसे ?

क्रूर मनुष्य स्वार्थों का समझौता भी नही कर सकता। जितनी अहिंसा विकसित होती है उतना ही मनुष्य सामाजिक बनता है। बहुत लोग आज का जीवन जीते हुए भी सामाजिक नही बन पाते।

क्या समाज मे रहने वाला भी असामाजिक होता है ?

• जी, हा।

• इसे जरा स्पष्ट कीजिए।

शोषण करने वाला क्या असामाजिक नही है ?

अपराध करने वाला क्या असामाजिक नही है ?

मनुष्य के प्रति घृणा करने वाला क्या असामाजिक नही है ?

मनुष्य को अछूत मानने वाला क्या असामाजिक नही है ?

मनुष्य को नीचा मानने वाला क्या असामाजिक नही है ?

वह मनुष्य समाज में रहकर भी सामाजिक नही होता जो मनुष्य का मनुष्य की दृष्टि से मूल्यांकन नही करता।

एक मनुष्य सब मनुष्यो के साथ एक जैसा व्यवहार करे, क्या यह आपको व्यावहारिक लगता है ?

यदि व्यावहारिक लगता है तो क्या पिता अपने पुत्रो की भाँति अपने पडोसी को भी अपने धन का हिस्सा देगा ?

यह सामाजिक व्यवसाय का विषय है, मानवीय मूल्याकन का प्रश्न नही है ।

मानवीय मूल्याकन का दृष्टिकोण क्या होगा ?

मनुष्य को मनुष्य की दृष्टि से देखना ।

इसका परिणाम क्या हो सकता है ?

उपयोगिता के आधार पर होने वाले मूल्याकन का दृष्टिकोण समाप्त हो सकता है ।

एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का अकन उपयोगिता की दृष्टि से करता है, उस समय जब तक उसकी उपयोगिता होती है तब तक उसके प्रति मृदु व्यवहार करता है और जब उसकी कोई उपयोगिता नही रहती तब उसके साथ क्रूर व्यवहार करने लग जाता है । किन्तु जब मनुष्य का अकन मनुष्य की दृष्टि से होता है, तब ऐसा नही होता ।

निष्कर्ष की भाषा मे इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिसके मन मे क्रूरता नही होती, वही मनुष्य को मनुष्य की दृष्टि से आक सकता है । और जो मनुष्य को मनष्य की दृष्टि से आँक सकता है, वही

सही अर्थ मे मनुष्य हो सकता है।

उस युवक के विचार अब मेरे विचारो से भिन्न नही थे। उसने वार्तालाप को और आगे बढा दिया। वह बोला। 'क्या मृदु व्यवहार केवल मनुष्य के प्रति ही होना चाहिए ?'

मैने कहा 'मै यह कहना नही चाहता कि पशु-पक्षी जगत् के साथ मृदु व्यवहार नही करना चाहिए। मै यह कहना चाहता हू कि मनुष्य मनुष्य के सम्पर्क में अधिक रहता है, इसलिए उसे मृदु व्यवहार का प्रारम्भ मनुष्य से करना चाहिए। फिर पशु-पक्षी आदि सभी के प्रति मृदु व्यवहार का प्रयोग करना चाहिए।'

. इसका कारण जानना चाहता हू।

: कारण बहुत स्पष्ट है

(१) मनुष्य भी प्राणी है और पशु-पक्षी भी प्राणी है। प्राणी का प्राणी के साथ निकट का सम्बन्ध होता है। इसलिए उसका कर्तव्य होता है कि वह प्राणियो के प्रति मृदु रहे, क्रूर न बने।

(२) मनुष्य सबसे अधिक बुद्धिमान् और समर्थ प्राणी है। इसलिए उसका कर्तव्य है कि वह असमर्थ प्राणियो के प्रति भी मृदु रहे, क्रूर न बने।

(३) जो अपने से असमर्थ प्राणी के प्रति क्रूर व्यवहार करता है, वह क्या आशा कर सकता है कि उसे अपने से अधिक समर्थ व्यक्ति के द्वारा क्रूर व्यवहार नही मिलेगा ? इसलिए उसका कर्तव्य होता है कि क्रूरता की आग मे वह अपने हाथो आहुति न डाले।

मैं बोल ही नही रहा था, उस युवक के मानसिक उतार-चढाव का अध्ययन भी कर रहा था। मुझे लगा, मृदुता की चर्चा से उसके अन्त करण मे सोयी हुई मृदुता जागृत हो उठी है। मैंने नाटकीय ढग से कहा —अब तुम मनुष्य बन चुके हो। अब तुम्हारा कर्तव्य है—मनुष्यता का विकास करना।'

मेरी बात पर उसने आश्चर्य प्रकट नही किया और उसके मौन पर मुझे आश्चर्य हुआ। अब हमारी चर्चा वाचिक स्तर को लाघकर मानसिक स्तर पर पहुच चुकी थी।

विमर्श

१ सच्चे मनुष्य की क्या परिभाषा हो सकती है ?
२ कर्तव्य का पहला पाठ क्या हो सकता है ?
३ अहिंसक समाज की रचना के लिए कौन कौन से उपाय सम्भव है ?

स्वतंत्र चेतना की सुरक्षा

एक विद्यार्थी-गोष्ठी मे मुझे निमंत्रित किया गया। मैने अपने विचार उनके सामने रखे। मै धर्म मे विश्वास करता हू। मैने वहा भी धर्म पर विचार रखे। फिर प्रश्नो का सिलसिला शुरू हुआ। एक विद्यार्थी ने पूछा 'हिन्दुस्तान धर्म-निरपेक्ष देश है, फिर हमे धर्म के पचडे मे क्यो पडना चाहिए ?'

मैने कहा 'यह त्रुटिपूर्ण प्रयोग है।'

'सही प्रयोग क्या होगा ?'

'हमे कहना चाहिए, हिन्दुस्तान सम्प्रदाय-निरपेक्ष देश है। एक लोकतत्रवादी राष्ट्र को सम्प्रदाय-निरपेक्ष अवश्य होना चाहिए, क्योकि लोकतत्र के साथ साम्प्रदायिक गतिविधियो का मेल नही बैठ सकता।'

'यदि धर्म-निरपेक्ष ही माना जाए तो क्या कठिनाई होगी ?'

'क्या तुम मानोगे कि अग्नि है पर उसमे उष्णता नही है ? धर्म भारतीयता की आत्मा है। उससे निरपेक्ष होने का अर्थ भारतीय आत्मा की समाप्ति होगा।'

'क्या वर्तमान वातावरण मे धर्म और सम्प्रदाय मे

भेद-रेखा खीची जा सकती है ?'

'मै तुम्हारी कठिनाई को समझता हू । आज सम्प्रदाय धम पर इतने छा गए है कि धम उनके नीचे दब-सा गया हे । पर हम शोधन की प्रक्रिया से अपरिचित नही ह ।'

'यह पानी थोडा ही है, जो शोधन कर दिया जाए ?'

'पानी नही है, पर पानी जितना ही जरूरी ह । इसलिए हमे उसका शोधन करना चाहिए । उसके साथ मिले हुए साम्प्रदायिकता के कीचड को बाहर निकाल फेकना चाहिए ।'

मै उत्तर देने वाला अकेला था और प्रश्न पूछने वाले सैकडो थे । धम के बारे मे उनके मन मे यही धारणा हे कि वह एक पुराना रूढिवाद है । इस वैज्ञानिक युग मे उसकी कोई उपयोगिता नही है । जिसकी आज उपयोगिता नही हे, उसका भार ढोना बुद्धिमानी नही हो सकती ।

मेरा चिन्तन उनसे भिन्न है । म धर्म को शाश्वत तत्त्व मानता हू । जो शाश्वत होगा वह पुराना तो होगा ही । कि तु जितना पुराना होगा उतना ही नया होगा । शाश्वत का अथ होता है, चिरपुराण और अचिरनवीन ।

मैंने बडी दृढता के साथ कहा 'धर्म पानी से भी ज्यादा जरूरी है।'

'यदि ऐसा होता तो हमें स्वय अनुभव हो जाता। उसके लिए आप यहां आने का कष्ट नही करते।' एक विद्यार्थी ने बडी शालीनता के साथ कहा।

'मै इस बात से सहमत नही हूं कि मैं यहॉ धर्म की आवश्यकता प्रमाणित करने आया हूं।'

'तो किसलिए आए है?'

'एक सशोधन सुझाने के लिए।'

'वह क्या है?'

'तुम्हारे जीवन मे धर्म का कुछ उदय है, इसलिए तुम लोग सामाजिक बने हुए हो। यदि उसका कुछ और उदय हो जाए तो तुम प्रगतिशील सामाजिक बन सकते हो।'

'हमारे जीवन में धर्म कहॉ है? हमारा उसमे विश्वास ही नही है।'

'विश्वास तुम्हारे पर निर्भर है, पर जो होता है वह अपने स्वभाव से होता है, भले फिर तुम मानो या मत मानो'।

'क्या आप बलात् हमारे जीवन मे धर्म का आरोपण करना चाहते है?'

'नही, कभी नही। बल-प्रयोग मे मेरा विश्वास ही नही है। किन्तु तुम आरोपण से क्यो घबराते हो?'

'उससे हमारी स्वतन्त्र चेतना का हनन होता है।'

'तुम स्वतत्र चेतना का हनन नही चाहते, क्या यह धर्म की भावना नही है?'

'यह हमारी सहज भावना है। इससे धर्म का क्या सबध?'

'तुम शायद मानते हो कि धर्म सहज नही होता। मैं मानता हू कि धर्म सहज से भी अधिक सहज होता है।'

'तो फिर हमारे घर मे बडे-बूढे लोग धर्म-स्थान मे क्यो जाते है?'

'तुम लोग विद्यालय मे क्यो आते हो?'

'पढने के लिए।'

'वे भी पढने के लिए जाते है। तुम विद्यालय मे आकर उतना ही पढ सकोगे, जितनी तुम्हारी सहज क्षमता है। वे धर्म-स्थान मे जाकर उतना ही पढ सकेंगे जितनी उनकी सहज क्षमता है।'

इस गोष्ठी मे कुछ अध्यापक भी उपस्थित थे। वे अब तक मौन बैठे थे। किन्तु सहजता के सिद्धान्त से वे सहमत नही हुए। एक अध्यापक ने मौन भग

करते हुए कहा 'यदि धर्म सहज होता तो हमारे समाज मे इतने धर्मोपदेशक नही होते ।'

इस प्रश्न ने मुझे उलझन मे डाल दिया । मैं बौद्धिक दबाव से परास्त होने वाला नही था । यदि मै बौद्धिक स्तर पर ही चलता तो अध्यापक महोदय को उलझन मे डाल देता । पर मै सारी चर्चा अन्तश्चेतना के स्तर पर कर रहा था । यही मेरी उलझन का कारण था ।

'मुझे स्वय लगता है कि धर्मोपदेश आज व्यवसाय बना हुआ है । धर्मशास्त्रो की रटी-रटाई बातो की दुहाई देने वाले उपदेशको की भरमार है । उन्हे सहज धर्म की दृष्टि प्राप्त नही है, इसलिए वे सहज धर्म की भावना जगाने मे सफल नही हो सकते । वे क्रिया-काडी धर्म का प्रचार करते है । उससे आज के बुद्धि-जीवी प्रभावित नही होते । इसीलिए सहज धर्म और सहजधार्मिक धर्म के क्षेत्र से दूर ही रह रहे है और धर्म को आरोपित मानने वाले धर्माधिकारी बन रहे है । हार-जीत वाले धर्म मे मेरा विश्वास नही है । मैं सहज धर्म मे विश्वास करता हू । ऋजुता मनुष्य का सहज धर्म है ।' मैने ऋजुता के साथ अपने मन की उलझन अध्यापक महोदय के सामने रख दी ।

यदि मै तर्क के आवरण मे वास्तविकता को छिपाकर कुछ कहता तो शायद उनका तर्क भी कुछ तेज होकर मेरे तर्क को काटने का प्रयत्न करता। कुटिलता अधकार है। यदि मेरे मन के किसी कोने मे अधकार होता तो वे तक का दीप जलाने का प्रयत्न करते। मैने अपने मन का आलोक उनके सामने प्रस्तुत कर दिया। आलोक को देखने के लिए आलोक आवश्यक नही होता।

ऋजुता हमारे जीवन का आलोक है। उसके होने पर ही हमारी स्वतत्र चेतना सुरक्षित रह सकती है।

विमर्श

१ धम तथा सम्प्रदाय के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
२ लोकतात्रिक शासन व्यवस्था मे सम्प्रदाय निरपेक्षता की आवश्यकता क्यो मानी गई है ?
३ स्वतत्र चेतना की सुरक्षा कसे हो सकती है ?

क्या यही धर्म है ?

दादा दुकान का काम निपटा घर आया। सीढियां चढते ही उसने कोमल को सबोधित किया। कोमल प्रकृति से सुकुमार और विनीत था। दादा को वह बहुत प्यारा था। दादा घर आ सबसे पहले कोमल से मिलता और फिर दूसरे काम करता। आज कोमल उसे दिखाई नही दिया। वह घर के भीतर गया। उसने कोमल के बारे मे पूछताछ की। घरवालों ने बताया कि वह कही बाहर गया है, अभी वापस नही आया। दादा उसकी प्रतीक्षा में बैठ गया। रात के दस बज गए, फिर भी कोमल नही आया। दादा को बडी चिन्ता हुई। उसने इधर-उधर आदमी दौडाया। पर उसका पता नही लगा। दादा अकुला उठा। कोमल की दादी ने उसे समझाया। "वह कही जाने वाला नही है। तुम सो जाओ। वह अपने आप आ जाएगा।" दादा सो गया।

अभी चार बजे ही थे, दादा की नीद उड गई। उसने भगवान् का नाम नही लिया। उसके लिए कोमल ही भगवान् था। कोमल! कोमल के सबो-

धन से घर गूंज उठा। घर के सब लोग जाग गए। कोमल देर से सोया था, इसलिए वह नहीं जागा। उसकी दादी ने कहा—"कोमल आ गया। अभी वह सोया हुआ है।" दादा को कुछ सान्त्वना मिली। इधर सूर्योदय हुआ, उधर कोमल की नींद टूट गई। वह उठा। इतने में दादा वहां पहुंच गया। उसने दादा को प्रणाम किया। दादा ने बड़ी आतुरता से पूछा—"कोमल! कल रात तू कहां चला गया था?" कोमल दादा के प्रश्न को ऐसे ही टालना चाहता था। वह दादा के स्वभाव को जानता था। जहां वह गया वहां जाना दादा को प्रिय नहीं था। उसने सिर हिलाकर दादा की बात का उत्तर दे दिया। किन्तु दादा ने फिर वही पूछा। कोमल ने धीमे स्वर में कहा—"मैं अपने मित्र के साथ चला गया था।" "मित्र के साथ ठीक, पर आखिर गया कहां?" दादा ने स्वर को तेज करते हुए कहा। कोमल ने मृदु स्वर में कहा—"मैं धर्म स्थान में गया था।" धर्म-स्थान का नाम सुनते ही दादा का पारा चढ़ गया। वह अपने आपको नास्तिक मानता था। धर्म के वातावरण से दूर रहने में ही अपना भला मानता था। उसने हजारों प्रयत्न किए पर वह अपने पुत्र और पुत्र-वधू को धर्म से अलग नहीं कर

सका । वह कोमल के मन मे बचपन से ही धर्म के प्रति घृणा भर रहा था । कोमल का अपरिपक्व मस्तिष्क दादा की बात मे उलझ गया । वह धर्म से बहुत चिढ़ता था । धर्म और धर्मगुरु के नाम से कत-राता था । हर मनुष्य को अपने विचारो का मोह होता है । वह अपने विचार दूसरो मे फैलाना चाहता है । कोई आदमी उनका अनुसरण करता है तो उसे बहुत सतोष मिलता है । दादा कोमल को अपने विचारो मे पगा हुआ देख बहुत प्रसन्न था । किन्तु आज उसकी प्रसन्नता एक ही झटके में जैसे टूट गई । धर्म-स्थान का नाम सुनते ही उसका दिवा-स्वप्न भग हो गया । उसके मन का सतुलन बिगड गया । उसने बडी भावुकता से पूछा "वहा किसी धर्मगुरु से बात-चीत की ?"

कोमल "हां, की थी ।"

दादा—'वह कैसी लगी ?"

कोमल "बहुत अच्छी लगी ।"

दादा "तूने धर्म को स्वीकारा तो नही ?"

कोमल "उस प्रतिभामूर्ति साधू के पास जाकर मै खाली हाथ कैसे लौट आता ?"

दादा "तो क्या लाया है ?"

कोमल—"अणुव्रत ।"

दादा—"चल, अभी चल । अपने को अणुव्रत-वणुव्रत रखना नहीं है । जो लाया है वह उन्हीं को वापस सौंप आना है ।" आगे-आगे कोमल पीछे पीछे दादा । दोनों धर्म-स्थान की ओर चले । वे मध्य बाजार से गुजर रहे थे । उनके सामने से एक आदमी आ रहा था । उसके हाथ में बेडिया थी । पीछे पुलिस के दो जवान थे । कोमल ने पूछा—"दादा ! इस आदमी के हाथों में बेडिया क्यों डाली गई है ?"

दादा ने कहा—"यह चोर है । इसने चोरी कर सामाजिक व्यवस्था भंग की है । इसलिए इसे बंदी बना, इसके हाथों में बेडिया डाली गई हैं ।"

"दादा, चोरी करना बुरा है ?" कोमल ने बहुत ही उत्सुक स्वर में जिज्ञासा की ।

दादा ने कहा—"यह बहुत बुरा काम है । इससे सामाजिक जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है ।"

"तो क्या मुझे चोरी नहीं करनी चाहिए ?"

"नहीं, बेटा ! कभी नहीं । ऐसी बात ही तुम्हारे मुंह मे नहीं आनी चाहिए ।"

"दादा ! एक अणुव्रत यही लाया हूँ कि मैं चोर-वृत्ति से किसी की चीज नहीं लूंगा ।"

"यह बहुत अच्छा है। इसे वापस नहीं देंगे। और अणुव्रतों को हमें नहीं रखना है।" वे थोड़ी दूर आगे बढ़े। उन्होंने देखा, जल्लाद एक आदमी को लिए जा रहा है। दोनों ओर नंगी तलवारें चमचमा रही हैं। कोमल देखते ही सिहर उठा "दादा, कितना डरावना है यह दृश्य ?" कोमल ने काँपते स्वर में कहा।

दादा बोल उठा "यह हत्यारा है। इसने एक आदमी का खून किया है। न्यायालय ने इसे फाँसी की सजा दी है। इसलिए जल्लाद इसे फाँसी पर चढ़ाने ले जा रहा है।"

"दादा ! हत्या के बदले में हत्या क्यों ?"

"यह हत्या नहीं है, यह उस अपराध का दंड है।"

"क्या हत्या करना अपराध है ?"

"बहुत बड़ा अपराध है, इससे समाज की जड़ हिल जाती है। एक आदमी दूसरे को भूखे भेड़िये की भाँति खाता रहे तो समाज का अस्तित्व कैसे टिके ?"

"दादा ! एक अणुव्रत यही लाया हूँ मैं किसी प्राणी की संकल्पपूर्वक हत्या नहीं करूंगा।"

"यह सचमुच अच्छा है। इसे हम नहीं लौटाएंगे।"

"तो फिर क्या लौटाएगे ?" कोमल ने मृदु मुसकान से कहा, "क्या मै झूठ वोलना सीखू ?"

"कभी नही। झूठ से विश्वास उठ जाता है। अविश्वस्त आदमी सफल नही होता।"

"झूठ नही वोलूगा, यह मेरा अणुव्रत है। क्या इसे लौटाना है ?"

"नही, कभी नही।"

उनकी वात अभी चल ही रही थी, इतने मे वे धर्म-स्थान के द्वार पर पहुच गए। दादा ने वडी झिझक के साथ उसकी सीढियो पर पैर रखे। आज तक वह किसी धर्म स्थान की सीढियो पर नही चढा था। किसी धर्मगुरु का मुह देखना उसके लिए पाप था। आज पहली वार उसने अपने जीवन का व्रत तोडा था।

दो क्षण तक वह मौन बैठा रहा। वातावरण की अनुकूलता देखकर वह वोला—"मुनिजी ! क्षमा करना, मैं धर्म को नही मानने वाला आदमी हूँ। कोमल को आपने धर्म दिया था, उसे लौटाने यहा आया हू। आपकी कुछ बातें मुझे अच्छी लगी, उन्हे नही लौटाएगे। अहिसा, सत्य और अचौर्य को अपने पास रखेगे। जो धर्म वाकी वचा है वह आप ले ले।"

मुनि ने धीर गभीर स्वर मे कहा—"क्या वासना

की उच्छृंखलता का नियंत्रण आवश्यक नहीं है ?"

"बहुत आवश्यक है, मुनिजी ! उसके बिना व्यक्तिगत और सामाजिक दोनो जीवन निस्तेज बन जाते है।"

"एक धर्म मैंने यही दिया था । क्या इसे लौटाओगे ?"

"नही, कभी नही ।"

"क्या सामाजिक विषमता तुम्हे पसन्द है ?" मुनि ने पूछा ।

"नही, बिलकुल नही । मै समाजवाद का कट्टर समर्थक हूँ । फिर विषमता मुझे कैसे प्रिय हो सकती है ?"

मुनि ने कहा "मैने एक धर्म यही दिया कि आर्थिक लोलुपता का नियन्त्रण करना, अधिक सग्रह नही करना ।"

"यह आपने बहुत अच्छी बात सिखाई है । इससे आगे और क्या दिया है ?"

"कुछ भी नही ।"

"तो क्या यही धर्म है ?"

"धर्म का मूल आधार यही है ।"

"भगवान् का नाम जपना, उपासना करना कलियुग का सबसे बडा धर्म है। हमने यही सुन रखा था ।"

"वह प्राथमिक नही है। जो पहली सीढी पर नही

चढा, वह पाचवी सीढी पर कैसे चढ जाएगा ? जप और पूजा वैयक्तिक धम है। व्रत का प्रभाव व्यक्ति और समाज दोनो पर होता है। इसलिए वह व्यापक धम है।'

दादा व्यापक धर्म की कल्पना मे इतना खो गया कि वह गया था कोमल का धम छुडाने के लिए कि तु उसका धर्म नही छुडाया, स्वय धम को ले घर चला आया।

विमश

१ धम सामाजिक व्यवस्था के लिए कसे सहायक बन सकता है ?
२ धम की विशेषताओ पर प्रकाश डालो।
३ दादा कोमल को धम-स्थान पर जाने से क्यो रोकत थे ?
४ क्या हमारे लिए धार्मिक होना जरूरी है और क्या ?

धर्म और व्यवहार

आचार्यश्री तुलसी के पास एक वहन आयी। नमस्कार कर वह वोली 'गुरुदेव! मेरी एक समस्या है। मै उसका समाधान चाहती हूँ।' आचार्यश्री ने समस्या प्रस्तुत करने को कहा, तव वह वोली 'मै धर्म नही कर सकती, इससे मन मे वडी अशान्ति रहती है।'

'क्या तुम्हारे मन मे धर्म करने की भावना नही है?'

'भावना वहुत है पर समय नही मिलता। वहुत वडा परिवार है। उसके लिए भोजन वनाने, वच्चो की देख-रेख करने व अन्य घरेलू कामो मे समय वीत जाता है। वैसे मै अच्छा जीवन जीती हू। कलह नही करती। झूठ नही वोलती। वच्चो को नही पीटती। सब के साथ अच्छा व्यवहार करती हू। और सब ठीक है पर कठिनाई यह है कि समय के अभाव मे मै धर्म नही कर सकती।'

आचार्यश्री ने मुसकराते हुए कहा 'कलह नही करना क्या धर्म नही है? सच वोलना क्या धर्म नही है? मृदु व्यवहार करना क्या धर्म नही है?

ये सब धर्म है, फिर तुम यह क्यो मानती हो कि मैं धर्म नही कर सकती ? धम को व्यवहार मे उतार लेना क्या सबसे बडा धम नही है ?'

एक गोष्ठी मे धार्मिक लोग एकत्र हो रहे थे। वे सब अपने जीवन के धार्मिक अनुभवो की गाथा सुना रहे थे। एक धार्मिक अपना अनुभव सुनाने खडा हुआ। वह बोला—'म बचपन से ही धम का प्रेमी रहा हूँ। मेरे आसपास का वातावरण धममय रहा है। जीवन की लम्बी यात्रा मे अनेक उतार-चढाव आए। अनेक समस्याओ का मुझे सामना करना पडा। फिर भी मुझे हर्ष है कि मैंने धर्म को कभी नही छोडा।'

गोष्ठी का वातावरण सजीव हो गया। उसकी दृढ आवाज और दृढ मुद्रा को लोग उत्सुकता-भरी दृष्टि से देखने लगे। वातावरण ने उसे और अधिक प्रोत्साहित कर दिया। वह और अधिक दृढता से बोला—'बन्धुओ! परिस्थितिवश कभी-कभी मुझे हत्या भी करनी पडी, फिर भी मैंने धर्म को नही छोडा। कभी-कभी डाका भी डालना पडा, फिर भी मने धम को नही छोडा।' उसकी ये बाते सुन श्रोता अवाक् रह गए। एक व्यक्ति ने उसके प्रवाह को तोडते हुए पूछ लिया—'महाशय! फिर आपका धर्म

क्या है जो हत्या करने और डाका डालने से भी नही टूटा ?'

वह अपने ही भावो में वह रहा था। उसे गोष्ठी-सदस्यो की विस्मयपूर्ण मुद्रा का बोध ही नही हो रहा था। वह उसी आवेग मे बोला 'आप मेरे धर्म के बारे मे सुनना चाहते है तो सुनिए, मैने आज तक किसी अछूत के हाथ का नही खाया।' धर्म की व्याख्या सुनते ही गोष्ठी मे सन्नाटा छा गया।

धर्म के दोनो चित्र धार्मिक जगत् में प्रदर्शित हो रहे है। पहला आत्म-भ्रान्ति का चित्र है। उसका कारण यह है कि आज आचरण का पक्ष गौण हो गया है और उपासना का पक्ष मुख्य हो गया है। इसलिए सामान्य आदमी उपासना या क्रियाकाण्ड को धर्म मानता है। वे नही होते है तो उसे ऐसा लगता है जैसे वह धर्म नही कर रहा है।

दूसरा चित्र धर्म-मूढता का है। वह समाज की सामयिक मान्यताओं को स्थायी धर्म के मानने से उत्पन्न हुई है।

धर्म के इन दोनो चित्रो मे परिवर्तन करना जरूरी है। वह सदाचार और नैतिक व्यवहार को प्रधानता देने से ही हो सकता है। इस दिशा मे अणुव्रत

आ दोलन ने नया सूत्रपात किया है। उसका मुख्य प्रयत्न है—जीवन-व्यवहार और धम की विसगति को दूर करना, धम स्थान और कम स्थान मे उभरने वाले एक ही व्यक्ति के दो व्यक्तित्वो की दूरी को कम करना। अणुव्रत का मुख्य घोप यह है कि पूजा-उपासना करने का अधिकारी वही हे जिसका आचरण शुद्ध है। नैतिकता की लौ जलाए बिना कोई भी व्यक्ति भगवान् की आरती कैसे उतार सकता है ?

नैतिकता हृदय की पवित्रता है। नैतिक व्यवहार हृदय की पवित्रता से फलित होता है। जिसका हृदय पवित्र नही होता वह धार्मिक नही हो सकता।

विमर्श

१ धम का वास्तविक स्वरूप क्या है ?
२ धम मूढता को समझाइए।
३ अणुव्रत आदोलन का मुख्य प्रयत्न क्या है ?

धर्म और सम्प्रदाय

आचार्यश्री तुलसी के पास दो युवक आए। उन्होंने धर्म के बारे मे जिज्ञासा की। आचार्य ने कहा, 'कौन-सा धर्म बताऊ? सम्प्रदाय का धर्म या जीवन का धर्म?'

वे बोले 'साम्प्रदायिक धर्म मे हमारा रस नही है। हम जीवन का रस जानना चाहते है।'

आचार्यश्री ने कहा 'मै तुम्हे धर्म के द्वार बताए देता हू। उनमे प्रवेश पाने पर तुम धर्म तक पहुंच जाओगे। धर्म के चार द्वार है

१. क्षमा—दूसरो के अस्तित्व को स्वीकार करो।
२ मुक्ति—असग्रह का अभ्यास करो, स्वतन्त्रता का हनन मत करो।
३ ऋजुता--निश्छल व्यवहार करो।
४ मृदुता--विनम्र व्यवहार करो।'

'क्या इनका किसी सम्प्रदाय से सम्बन्ध नही है?'

'मेरी समझ मे सभी धर्म-सम्प्रदायो से इनका सम्बन्ध है, किसी एक से नही है। धर्म से मुक्त होकर कोई भी सम्प्रदाय धार्मिक सम्प्रदाय कैसे हो सकता है?'

'यदि इनका सम्बन्ध सभी सम्प्रदायो से है तो फिर उनमे इतना मतभेद क्यो हे ?'

'मनुष्य मे रुचि और सस्कार एक जैसे नही होते, तब मतभेद कैसे नही होगा ?'

'सत्य दो नही है, तब मतभेद क्यो होना चाहिए ?'

'सत्य दो नही हे, तो उसका ज्ञान भी सबको एक समान नही हे । यह मतभेद सत्य के आधार पर नही हे, किन्तु उस तक मनुष्य की पहुच के आधार पर हे ।'

'कुछ भी हो, मतभेद होने से कठिनाइया अवश्य ही बढी है ।'

'कठिनाइया मतभेद होने से नही बढी हे । वे सम्प्रदाय को धम मान लेने से बढी ह ।'

'धम और सम्प्रदाय को अलग कैसे माना जा सकता है ? छिलके और गूदे को अलग मानने पर हमारी फल की आशा धूमिल नही हो जाएगी ?'

'छिलका आखिर छिलका है, वह गूदा नही है, यह तो हमे मानना ही होगा । फल की सुरक्षा मे छिलके की उपयोगिता है, इसे मै अस्वीकार नही करता । म मानता हू कि फल खाने के समय छिलके की उपयोगिता समाप्त हो जाती है । धम तक पहुचने के लिए सम्प्रदाय की उपयोगिता हे किन्तु वहा पहुच

जाने पर धर्म का स्थान सम्प्रदाय से ऊंचा हो जाता है।'

'क्या सभी सम्प्रदायो को एक नही किया जा सकता ?'

'हमे स्वतन्त्र चितन को यान्त्रिक ढग से एक करने की बात नही सोचनी चाहिए।'

'क्या साम्प्रदायिक समस्या के समाधान के सारे दरवाजे बन्द है ?'

'ऐसा नही है। इस समस्या को सुलझाने के लिए भारतीय दर्शन के क्षेत्र मे समन्वय पद्धति का विकास किया गया था।'

'समन्वय का अर्थ ?'

'दो धाराओ मे होने वाली असमानता को गौण कर समानता को आगे लाना। दो विरोधी धाराओ के सहअस्तित्व मे विश्वास रखना। अपने से भिन्न विचारो को सहन करना।'

'समन्वय का विचार कब से चला आ रहा है ?'

'यह बहुत पुराने जमाने से चला आ रहा है। इस प्रसग मे सम्राट् अशोक का एक शिलालेख (बारहवां) मननीय है। वह इस प्रकार है

देवताओ का प्यारा प्रियदर्शी राजा सब धर्मवालो

को, सन्यासियो को और गृहस्थो को दान से और अनेक प्रकार के सत्कार से पूजता (आदर करता) है। परन्तु देवताओ का प्यारा सब धमवालो की तात्विक उन्नति के बराबर किसी भी दान या पूजा को नही समझना। यह तात्त्विक उन्नति कई प्रकार की है। पर इसका मूल वाणी का सयम है, क्योकि इससे अकारण अपने धम की स्तुति और दूसरे के धम की निन्दा नही होती। ऐसा किसी विशेप अवसर पर ही किया जा सकता हे। पर ऐसे अवसर पर दूसरे धम वालो के मतो का आदर करना चाहिए। ऐसा करने से (मनुष्य) अपने ही पथ की उन्नति करता है और दूसरे पथो का भी उपकार करता है। इससे विपरीत करने से अपने पथ की हानि होती है और दूसरो की भी। यदि कोई अपने पथ की भक्ति के कारण या अपने पथ की उन्नति की इच्छा से अपने धमवालो को पूजता है और दूसरे धमवालो की बुराई करता ह तो ऐसा करने से वह अपने ही पथ पर कठोर प्रहार करता हे। अत मेल-मिलाप ही अच्छा ह, क्योकि इससे अन्य धर्मानुयायी भी दूसरो के धम को सुन सकते ह। देवताओ के प्यारे (राजा) की ऐसी इच्छा ह कि सब पथ वाले पूरी तौर से जानकार और भले हो।

प्रत्येक धर्म के माननेवालो से कहना चाहिए 'देवताओं का प्यारा (राजा), सब धर्मवालो की तात्त्विक उन्नति तथा व्यापक दृष्टिकोण के बराबर किसी दान या पूजा को नही मानता।' इसी के लिए बहुत से धर्ममहामात्र (धर्म के उपदेश करने वाले अधिकारी), स्त्री-अध्यक्ष महामात्र (स्त्रियो की देखभाल करने वाले अधिकारी), व्रजभूमिक (गोचर भूमि के अधिकारी) तथा दूसरे अधिकारी वर्ग नियत किए गए है। इसका फल अपने-अपने पथ की वृद्धि और धर्म की उन्नति है।'

'धर्म-समन्वय के विषय मे आपके विचार क्या है?'

इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यश्री ने कहा—'सब धर्मों का समन्वय, यह मेरा प्रिय विषय है। धर्मों मे परस्पर टकराव देखता हू तो मुझे वेदना होती है। धर्म की पृष्ठभूमि मैत्री है, अहिसा है, करुणा है। क्या मैत्री, अहिसा और करुणा मे परस्पर टकराव हो सकता है? धर्म आकाश की भाँति अनन्त और असीम है। वह मेरा-तेरा बन जाता है, तब विभक्त हो जाता है।

आकाश मेरे लिए है पर वह केवल मेरे लिए नही है, क्योकि वह महान् है, असीम है। मेरी कुटिया

केवल मेरे लिए हो सकता है, क्योकि वह लघु है, ससीम है।

समुद्र मेरे लिए है पर वह केवल मेरे लिए नही है, क्योकि वह महान् है, असीम है। मेरा घडा केवल मेरे लिए हो सकता है, क्योकि वह लघु है, ससीम है।

मैं जब अपनी कुटिया को ही पूर्ण आकाश मानने लग जाता हू तब मेरा मन आग्रह से भर जाता है।

मैं जब अपने घडे को ही पूरा समुद्र मानने लग जाता हू तब मेरा मन आग्रह से भर जाता है।

जब मेरा मन आग्रह से भरा होता है तब धर्म मेरा बन जाता है, सत्य से विच्छिन्न हो जाता है, कट जाता है। इसी कोटि के धर्मों मे टकराव हो रहा है। यह टकराव तब मिटेगा जब हम धर्म को अपने जीवन मे लीन करेंगे, किन्तु उसकी व्यापक सत्ता को अपने मे विलीन नही करेंगे। हमारी धर्म की समझ बौद्धिक और वैचारिक है। बुद्धि और विचार सबके समान नही होते। इसलिए हमारा धर्म भी अलग-अलग हो जाता है। सचाई यह है कि धर्म अलग-अलग नही हो सकता। आप अपने धर्म को सत्य प्रमाणित करने का प्रयत्न करते है और मै अपने धर्म को सत्य प्रमाणित करने का प्रयत्न करता हू। इस प्रकार परस्पर विरोध बढ

जाता है। मै समन्वय की दृष्टि से देखता हूँ तव मुझे लगता है कि इस दृष्टिकोण मे परिवर्तन होना चाहिए।

अपने धर्म को मै सत्य मानूँ यह उचित है किन्तु इसका अर्थ यह क्यो होना चाहिए कि दूसरे धर्मो को असत्य ठहराकर ही मै अपने धर्म को सत्य मानूँ। मै अपने धर्म को सत्य इसलिए मानूँ कि उसे मै हृदयगम कर चुका हू। दूसरे धर्मो को मुझे असत्य इसलिए नही मानना चाहिए कि उन्हे मै अभी हृदयगम नही कर पाया हू। चिन्तन का अवकाश खुला रहना चाहिए, मानकर ही नही बैठ जाना चाहिए। जो साफ-साफ असत्य लगे, उसका अस्वीकार किया जा सकता है, किन्तु वह अस्वीकार विरोध के स्तर पर नही होना चाहिए।

धर्म-समन्वय के लिए मैने कुछ वर्ष पूर्व पाच सूत्र प्रस्तुत किए थे। उनकी उपयोगिता मे मेरा पूर्ण विश्वास है। वे पाच सूत्र ये है

१ मडनात्मक नीति बरती जाए। अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाए। दूसरो पर लिखित या मौखिक आक्षेप न किए जाएं।

२ दूसरो के विचारो के प्रति सहिष्णुता रखी

जाए ।

३ दूसरे सम्प्रदाय और उनके अनुयायियो के प्रति घृणा व तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाए ।

४ कोई सम्प्रदाय परिवतन करे तो उसके साथ सामाजिक वहिष्कार आदि अवाछनीय व्यवहार न किए जाए ।

५ धम के मौलिक तत्व—अहिसा, सत्य, अचौय, ब्रह्मचय और अपरिग्रह को जीवनव्यापी वनाने का सामूहिक प्रयत्न किया जाए ।

विमश

१ धम के चार द्वार कौन कौन से हैं ? उनका अथ स्पष्ट करो ।
२ सम वय का अथ क्या है ?
३ धम सम वय के विषय मे प्रस्तुत पाठ म क्या कहा गया है?
४ धम सम वय के पाच सूत्र कौन कौन से है ?

अहिंसा और कायरता

हर आदमी सोचता है मुझे कोई गाली न दे, न सताए, न मारे-पीटे और न किसी कठिनाई मे डाले। इसका अर्थ है कि हर आदमी दूसरो द्वारा अपने प्रति अहिसा का व्यवहार चाहता है।

जब दूसरो के प्रति व्यवहार करने का प्रसंग आता है तब तर्क उपस्थित हो जाता है कि अहिसा कायरता है। मै स्वय जानना चाहता हूँ और आप भी जानना चाहेगे, अहिसा और कायरता मे क्या कोई निकट का सम्बन्ध है? यदि है तो वह हमारे लिए सर्वथा अनुपयोगी है। हम ऐसी किसी भी वस्तु का स्वागत करने के लिए तैयार नही है, जो हमारे पराक्रम की आग को बुझाए और हमारे मानस में कायरता का भाव भरे।

यदि उनमे निकट का सम्बन्ध नही है और हम उसे आरोपित कर रहे है तो हमे अपनी भूल सुधारनी चाहिए। अहिसा का सही मूल्यांकन करना चाहिए।

कल्पना कीजिए (१) अनिल ने सुनील पर आक्रमण किया। वह डरकर भाग गया। यह अहिसा

नही है, उसकी कायरता है।

(२) किसी दूसरे समय अनिल ने सुनील पर आक्रमण किया। उसने ईट का जवाब पत्थर से दिया। यह हिंसा के प्रति हिंसा है।

(३) किसी प्रसग मे अनिल ने सुनील पर आक्रमण किया। इस वार सुनील ने आक्रमण का उत्तर प्रेम से दिया। उसके वलिदान की तैयारी ने अनिल के हृदय को जीत लिया।

कायर आदमी शत्रु से डरकर भाग जाता है। वह स्वय वलवान् होता है तो शत्रु को भगा देता है। हिंसा के दो ही परिणाम होते है—स्वय का पलायन या दूसरो का पलायन। हिंसा के पहले परिणाम को कायरता और दूसरे को वीरता कहा जाता है। अहिंसा मे न पलायन है और न वीरता। उसकी शक्ति है प्रेम। वह दो व्यक्तियो के हृदय को जोडता है, भय मुक्त करता है। समस्या को सुलझाने का हमारा दृष्टिकोण हिंसा से भरा हुआ है। हमने मान रखा है कि एक गाली की जगह दो गालिया देने व एक गोली की जगह दो गोलिया चलाने से हमारी प्रतिकारात्मा शक्ति की छाप जम जाती है। फिर कोई आदमी अनिष्ट करने की वात नही सोच सकता।

विरोधी लोगो के प्रति यह दृष्टिकोण हो सकता है। पर सब लोग हमारे विरोधी नही है। जो मित्र है, पारिवारिक है या तटस्थ है न शत्रु है और न मित्र है, उनके प्रति हमारे व्यवहार का आधार क्या होगा? क्या उनके और हमारे बीच कभी भेद की दीवार खडी नही होती है?

मनुष्य के मन में सदेह, कल्पना और आशका के लिए अवकाश है तब तक कारण या अकारणवश भेद की दीवारे खडी हो जाती है। क्या उन्हे हिसा के द्वारा तोडा जा सकता है?

हम सारी दुनिया को शत्रु बनाकर जी नही सकते। हमे उन लोगो की जरूरत है, जो सुख-दुख मे हमारे भागीदार बनते है। हमे उन लोगो की जरूरत है, जो हृदय का विनिमय करते है। हमे उन लोगो की जरूरत है, जो समर्थन लेते और देते है। यह जरूरत अहिसा के द्वारा ही पूर्ण हो सकती है। क्या हिसा के द्वारा हम किसी को सुख-दुख मे भागीदार बना सकते है? क्या हिसा के द्वारा हम किसी का हृदय प्राप्त कर सकते है? क्या हिसा के द्वारा हम किसी का समर्थन प्राप्त कर सकते है? प्रेम और विश्वास दिए बिना हार्दिक भावना प्राप्त नही की जा

सकती।

हिंसा में शक्ति है। इस तथ्य को अस्वीकार कर हम सत्य के साथ आंख-मिचौनी खेलना नहीं चाहते। किंतु वह वियोजक-शक्ति है। समाज का आधार है संयोजक-शक्ति। यदि समाज में से अहिंसा के तत्त्व को निकाल दिया जाए तो क्या समाज का अस्तित्व शेष रहेगा? जब समाज में हिंसक प्रवृत्तियां बढ़ती हैं तब समाज के सूत्रधार चिंतित हो उठते हैं। उन्हें हिंसा में समाज की आधारशिला हिलती-सी प्रतीत होती है।

युद्ध एक विशेष परिस्थिति है। उस समय हिंसा की अनिवार्यता आ जाती है। विशेष परिस्थिति के नियम को क्या सामान्य किया जा सकता है?

कुछ लोग कहते हैं कि हमारे देश की पराधीनता का हेतु अहिंसा है। वह मान्यता जाने-अनजाने ऐतिहासिक तथ्यों को उलटने का प्रयत्न है। गुप्तयुग हिन्दुस्तान का स्वर्णयुग रहा है। उसमें अहिंसा का प्रमुख स्थान था। देश हिंसा से पराधीन बना है। आपसी ईर्ष्या, घृणा और फूट ने देश की आत्मा को छिन्न-भिन्न कर दिया। उस स्थिति में वह बाहरी आक्रमणों से परास्त हो गया।

अहिंसा हमारे दैनिक जीवन में आने वाली

समस्याओ को सुलझाने का सबसे सरल और सबसे शक्तिशाली उपाय है।

अहिसा प्रेमपूर्ण, शान्तिमय और सरल जीवन जीने की कला है। ध्वस, तोड़फोड आदि हिसक प्रवृत्तियो के द्वारा विवशता पैदा की जा सकती है, पर यह वाध्यता का मार्ग है। वाध्यता समाज को उस दिशा मे ले जाती है, जहा उचित-अनुचित का विचार करने का कोई अवकाश ही नही होता। इस-लिए सही दिशा मे सही पग बढाने वाला समाज अहिसा का मार्ग चुनता है।

विमर्श

१. अहिसा दैनिक जीवन की समस्याओ को कैसे सुलझाती है ?
२ कायरता और अहिसा मे क्या कोई सम्बन्ध है ?

अहिंसा की शक्ति

१ क्या आप मानते है कि हिंसा मे सयोजक-शक्ति नही है? हिसा के नाम पर जितने आदमी एकत्र या सगठित होते हे, उतने अहिंसा के नाम पर कभी नही होते। फिर आपके मानने का क्या आधार है ?

—हिंसक समूह अपने से भिन्न लोगो को स ताप देने के लिए एकत्र होते ह इसलिए उनका समुदित होना वस्तुत सयोजक-शक्ति का परिणाम नहीं है।

अहिंसक आदमी यदि दो-चार भी एकत्र होते है तो उनका उद्देश्य सबको जोडने का होता हे। हिंसा तोडने वाली शक्ति है, अत उसमे सयोजक-शक्ति नही हो सकती।

२ क्या हिंसा जीवन की अनिवायता नही है ?

—हिंसा जीवन की अनिवायता हे, किन्तु उसकी मुक्तता जीवन की अनिवायता नही है।

आवश्यक हिंसा करते करते हिंसा का अभ्यास हो जाता है, फिर वह अनावश्यक हिंसा भी करने लग जाता हे। कोई गृहस्थ अहिंसक होता है, उसका अथ यह नही है कि वह आवश्यक हिंसा से बच जाता

है। उसका अर्थ यह है कि वह अनावश्यक हिसा को छोड देता है।

३ क्या अनावश्यक हिसा कोई करता है ?

हिसा के मुख्य हेतु तीन है (१) अज्ञान, (२) प्रमाद, (३) आवश्यकता।

अज्ञान-जनित हिसा कुछ लोग हिसा के परिणामो से अनभिज्ञ होने के कारण हिसा करते है। कुछ लोग समस्या के समाधान का हिसा के सिवा दूसरा विकल्प नही जानते इसलिए हिसा करते है।

प्रमादजनित हिसा अपने वैभव को बढाने, विलास को सुरक्षित रखने व गर्व को तृप्ति देने के लिए अनेक लोग हिसा करते है।

आवश्यक हिसा जीवन की विवशता है। अज्ञान और प्रमाद से होने वाली हिसा सामाजिक विषमता और कठिनाइया पैदा करती है। वे जीवन के लिए अनिवार्य नही है, फिर भी अनेक लोग उन हिसाओ मे आसक्त है।

४ सब लोग अहिसक नही बनते, उस स्थिति मे कुछ लोगो का अहिसक बनना क्या कठिनाइयो को मोल लेना नही है ?

अच्छा आचरण करते समय सदा यह तर्क हमारे

सामने उपस्थित होता है। बुराई के लिए इस तक का प्रयोग क्यो नही किया जाता है कि सब लोग बुरे नही बनते, उस स्थिति मे कुछ लोगो का बुरा बनना क्या कठिनाइयो को मोल लेना नही है ?

बुराई करने वाले आदमी मे साहस और पराक्रम होता है फिर सदाचरण करने वाले मे वह क्यो नही होना चाहिए ?

५ क्या अहिंसा मन मे भय का भाव नही भरती है ?

—बिलकुल नही। अहिंसा और भय की दिशाएं भिन्न है। कोई आदमी अहिंसक है और वह डरता है तो माना जा सकता है कि वह अहिंसक नही है।

अभय अहिंसा की कसौटी है। एक आदमी दूसरो को कष्ट देता है, घृणा करता है, उन्हे अपमानित करता है, तब उसे उन से भय होता है। अहिंसक न किसी को कष्ट देता, न किसी से घृणा करता, और न किसी को अपमानित करता, फिर उसे किससे भय होगा ?

६ यह स्वार्थ-प्रधान ससार है। जहा अपना स्वार्थ नही सधता वहा आदमी अकारण ही शत्रु बन जाता है। फिर अहिंसक अभय की कल्पना लिए कैसे

बैठ सकता है ?

अभय का मूल हेतु शक्ति है। शक्ति-हीन व्यक्ति न अभय बन सकता है और न अहिंसक। अहिंसक बनने का अर्थ है अपनी शक्ति का भान हो जाना।

७ क्या अहिंसा की तुलना मे हिंसा की शक्ति बडी नही है ?

नही है। हिंसा का शक्ति-स्रोत घृणा और द्वेष है। अहिंसा का शक्ति-स्रोत है प्रेम। घृणा निरन्तर नही की जा सकती। निरन्तर घृणा करने वालो मे मानसिक रोग पैदा हो जाते है। प्रेम निरन्तर किया जा सकता है। उससे प्रसन्नता बढती है। उससे शरीर और मन दोनो स्वस्थ होते है। मारने वाला आखिर थक जाता है, किन्तु नही मारने वाला कभी नही थकता।

८ क्या अहिंसा की अति से हानि नही होती ?

जीवन मे अहिंसा का प्रारम्भ हो जाए तो बहुत है। अति की बात कहा प्राप्त होती है ? घरेलू जीवन जीनेवाला आदमी अनावश्यक हिंसा न करे, अज्ञान और प्रमादजनित हिंसा न करे, इस सकल्प-सूत्र में अति के लिए अवकाश ही नही है। सामाजिक प्राणी के लिए अहिंसा का दर्शन इतना-सा है कि वह जीविका और सुरक्षा के लिए होने वाली हिंसा मे

आसक्त न बने और अनावश्यक हिंसा से बचने का सतत प्रयत्न करता रहे।

विमर्श

१ अहिंसा के मुख्य हेतु कौन कौन से हैं ?
२ अभय अहिंसा की कसौटी है—इसका विवेचन कीजिए
३ हिंसा की शक्ति बडी है या अहिंसा की ? स्पष्ट कीजिए।

भौतिकता और आध्यात्मिकता

एक दिन मै धार्मिक लोगो के बीच बैठा था। तत्वचर्चा चल रही थी। उसी प्रसग मे मैने एक धार्मिक से पूछा 'तुम्हे रोटी खाने की आवश्यकता का अनुभव होता है ?' वह आश्चर्य के साथ मुझे देखने लगा। मैने यह क्या प्रश्न पूछा, वह समझ नही पा रहा था। 'हर आदमी को भूख लगती है इसलिए वह खाता है। आपके प्रश्न का आशय क्या है, मै समझ नही पाया ?' बडी विनम्रता से उस भाई ने कहा।

मैने दूसरे ही क्षण उससे पूछा 'जैसे तुम्हे रोटी खाने की आवश्यकता का अनुभव होता है वैसे ही क्या धर्म करने की आवश्यकता का अनुभव भी होता है ?' वह चक्कर मे पड गया। इसका क्या उत्तर दे, समझ नही पाया। उसने मेरे प्रश्न का समाधान मुझ से ही चाहा।

मैने कहा 'रोटी हमारे शरीर की मॉग है। धर्म हमारे शरीर की मॉग नही है। इसलिए शरीर के द्वारा जैसे खाने की आवश्यकता अनुभूत होती है

वैसे उसके द्वारा धम की आवश्यकता अनुभूत नही होती।'

'तो फिर हम धम क्या करते हे ? जिसकी आवश्यकता का अनुभव नही होता, उसे करने से क्या लाभ ?'

'यह प्रश्न सुनकर मुझे ऐसा लगा, जैसे मैंने उनकी आस्था को हिला दिया। पर म इसे अनुचित नही मानता। आस्था को प्रकट करने के लिए उसके आवरण को हटाना आवश्यक है।

'धम करना क्या मन की अपेक्षा है?' बडे सकोच के साथ उस भाई ने पूछा।

'मन कल्पनाओ और इच्छाओ का केन्द्र हे। धर्म का अथ है कल्पनाओ और इच्छाओ का सयम। फिर मन धम को किसलिए पसद करेगा ?'

'तो आप कहना चाहते हे कि धम की कोई अपक्षा ज्ञात नही हे। वैसे ही अनजाने हम लोग धम करते जा रहे हे ?'

'नही, मेरा यह आशय नही हे। धम की प्रेरणा आन्तरिक चैतन्य से फूटती ह। धम की अपेक्षा समाज को ह। जीवन-व्यवहार की पवित्रता, सच्चाई, प्रामाणिकता और सतुलन के विना समाज स्वस्थ नही रह

सकता ।

धर्म की अपेक्षा हर व्यक्ति को है। संघर्ष, स्पर्धा, ईर्ष्या, कलह, आतंक और विश्वासघात से भरे इस दुनिया के वातावरण मे क्या धर्म की आराधना के बिना कोई आदमी शान्ति का जीवन जी सकता है ?

धर्म की अपेक्षा शरीर को भी नही है ऐसी ऐकान्तिक स्थापना नही की जा सकती। अधार्मिक आदमी स्वस्थ नही रह सकता। जिस व्यक्ति का अपनी वासनाओं तथा इन्द्रियो पर नियत्रण नही है, वह शरीर के स्वास्थ्य की सुरक्षा कैसे कर सकता है ?'

'मै समझ गया धर्म हमारे लिए बहुत आवश्यक है।'

मैने उसकी आकृति को देखा। मुझे लगा मैं उसकी आस्था को प्रकट करने मे सफल हुआ हूॅ। अब हमारी बातचीत समाप्त होने को थी। इतने मे एक दूसरा व्यक्ति खडा हो गया। वह अच्छा शिक्षित था और उसकी तर्क-शक्ति भी अच्छी थी। उसने चर्चा के नए आयाम खोल दिए। उसने जिज्ञासा के स्वर मे कहा -'क्या भौतिकता और आध्यात्मिकता मे कोई सामजस्य है ?'

'चैतन्य और शरीर में सामंजस्य है तब मैं कैसे कहूँ कि भौतिकता और आध्यात्मिकता में सामंजस्य नहीं है ?'

'यदि उनमे सामंजस्य है तो फिर भौतिकता का विरोध क्यों करते हैं ?'

'मेरी दृष्टि में धार्मिक लोग भौतिक विकास का विरोध नहीं कर रहे हैं। वे विरोध कर रहे हैं भौतिकता के एकांगी विकास का।

भौतिकता और आध्यात्मिकता का संतुलित विकास समाज की अपेक्षा है, इसलिए भौतिक विकास के विरोध का कोई कारण ही नहीं है।'

'धार्मिक आदमी का लक्ष्य आध्यात्मिक विकास है, फिर वह भौतिक विकास किसलिए चाहेगा ? और जिसका लक्ष्य भौतिक विकास है, उसके लिए आध्यात्मिक विकास किसलिए आवश्यक होगा ?'

'आध्यात्मिक विकास आंतरिक गुणों का विकास है। उससे भौतिक अपेक्षाए पूरी नहीं होती। उनकी पूर्ति भौतिक संपदा के विकास से हो सकती है। इसलिए हर सामाजिक प्राणी भौतिक विकास चाहता है।

भौतिक विकास पदार्थों का विकास है। उससे

आंतरिक गुणो का विकास नही होता। वह आध्यात्मिक प्रयत्नो से ही हो सकता है। इसलिए उसकी आवश्यकता को कैसे अस्वीकार किया जा सकता है?

इस प्रसग मे एक कहानी बहुत उपयोगी होगी। एक गाँव मे दो आदमी रहते थे। एक का नाम था रामू और दूसरे का नाम था श्यामू। रामू सम्पन्न था और श्यामू साधारण। दोनो के चिंतन की धारा बिलकुल भिन्न थी। इसलिए दोनो दो दिशाओ मे चलते थे। दसो वर्ष बीत गए, उनमे कभी समझौता नही हुआ। एक बार श्यामू किसी आरोप मे फस गया। उसे एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा हुई। दो महीने बाद रामू भी व्यापारिक अपराध का शिकार हो गया। उसे भी एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा हुई। पुराने जमाने मे जिसे कठोर कारावास की सजा होती उसके पैरो मे काठ का खोडा डाल दिया जाता। एक खोडे मे दो छेद होते और वह कैदियों के पैरो मे एक साथ डाल दिया जाता। सयोग ऐसा मिला कि जिस खोडे मे श्यामू था, उसका दूसरा साथी सजा पूरी होने पर चला गया। रामू को उसी खोड़े मे डाल दिया गया। श्यामू जेल का सामान्य भोजन खाता था। रामू के लिए घर से भोजन आता था। श्यामू

ने कहा—'यहा तुम अकेले-अकेले अच्छा भोजन नही खा सकते। मुझे भी इसका विभाग देना होगा।' रामू ने उसकी बात को सुना-अनसुना कर दिया, वह अकेला ही खा गया। दोनो का भाग्य एक ही खोडे मे बँधा था। रामू ने इस तथ्य की ओर ध्यान नही दिया। रामू ने पेट भर खा लिया। अब उसे कुछ टहलने की आवश्यकता हुई। रामू ने श्यामू से कहा —'आओ, हम कुछ टहल लें।' श्यामू बोला—'मेरा पेट खाली है, म नही टहल सकता।' अब श्यामू रामू की हर अपेक्षा मे अवरोध डालने लगा। एक-दो दिन इस प्रकार बीते। रामू परेशान हो गया। आखिर रामू ने श्यामू से समझौता कर लिया। अब जो भी घर से आता उसका आधा हिस्सा वह श्यामू को दे देता। एक बार घरवालो ने उसका विरोध किया। रामू ने कहा—'अभी मेरा भाग्य श्यामू के साथ जुडा हुआ है। श्याम से मेरा प्रेम नही है। मेरे और उसके विचारो मे कोई मेल नही हे। किन्तु तुम ही कहो, वतमान स्थिति मे इमसे समझौता किए बिना क्या म जी सकता हूँ ?'

भौतिकता और आध्यात्मिकता मे रामू और श्यामू जैसा समझौता है। हमारे शरीर और चैतन्य

की दो दिशाए है। दोनो की दिशा एक नही है। चैतन्य का भाग्य शरीर से जुडा हुआ है। इस स्थिति मे समझौते के सिवा कोई चारा नही है।

भौतिक पदार्थों से धार्मिक का विरोध नही है। उसका विरोध समझोते को वास्तविकता मानने से है। भौतिकता के प्रति होने वाली आसक्ति से है।

मेरा झुकाव न भौतिकता की ओर था और न आध्यात्मिकता की ओर। मै दोनो की यथार्थता को स्वीकार कर चल रहा था। मेरी तटस्थता ने प्रश्न-कर्त्ता को प्रभावित किया। अब मेरे और उसके विचारो मे कोई दूरी नही थी।

विमर्श

१ धर्म हमारे लिए क्यो आवश्यक है ?

२ सामाजिक विकास के लिए भौतिकता एव आध्यात्मिकता क्यो अपेक्षित है ?

३ प्रस्तुत पाठ मे दी गई कथा का निष्कर्ष अपने शब्दो मे लिखो।

जीवन की परिभाषा

कुछ विद्यार्थी कॉलेज जा रहे थे। रास्ते में उन्होने एक पर्दा टगा हुआ देखा। उसमे लिखा था—'सयम खलु जीवनम्'—सयम ही जीवन है। उन्हे यह वाक्य वडा विचित्र सा लगा। परस्पर अनेक तर्क-वितर्क किए। पर मन को समाधान नहीं मिला।

कुछ दिन बाद कॉलेज मे एक गोष्ठी आयोजित की गई। विषय था 'विद्यार्थी और नैतिकता'। विषय-प्रवेश के लिए म खडा हुआ। मैने 'सयम खलु जीवनम्'—इसी वाक्य से विषय-प्रवेश किया। उन विद्यार्थियो का प्रश्न फिर सद्यस्क हो गया। मेरे वक्तव्य के बाद प्रश्नोत्तर का क्रम चला। एक विद्यार्थी ने पूछा—'सयम का अर्थ क्या है ?'

मने कहा—'इन्द्रिय-विजय।'

'यह जीवन कैसे हो सकता है ?' एक दूसरे विद्यार्थी ने पूछा।

'इन्द्रिय-विजय के द्वारा असामयिक मौत टल जाती है इसलिए यह जीवन है। वहुत खाने वाला बहुत जल्दी मरता है, इसलिए यह सही है कि असयम

मृत्यु और सयम जीवन है।'

'हम लोग जो घरेलू जीवन जीते है, उसके लिए इद्रिय-विजय की आवश्यकता नही है, ऐसा मैं मानता हूँ' तीसरे विद्यार्थी ने कहा।

मैने बहुत विनम्रता से कहा 'मै तुम्हारे अभिमत का समर्थन करने मे असमर्थ हूँ। मैं मानता हूँ कि इद्रिय-विजय की आवश्यकता मनुष्य मात्र के लिए है, फिर वह सन्यासी हो या गृहस्थ। इसमे मात्रा-भेद हो सकता है, किन्तु गृहस्थ के लिए इद्रिय-विजय की आवश्यकता का अस्वीकार नही हो सकता।'

'क्या हमारे तत्त्ववेत्ताओ ने इद्रिय-विजय को गृहस्थ के लिए आवश्यक माना है?'

मैने स्वीकारात्मक सिर हिलाया और कहा 'हॉ, माना है।'

'तो उदाहरण दीजिए।'

मैने कुछ वाक्य उनके समक्ष रखे।

महामंत्री कौटिल्य

'सुख का मूल धर्म (विधि-विधान) है।

धर्म का मूल अर्थ है।

अर्थ का मूल राज्य है।

राज्य का मूल इन्द्रिय-विजय है।'

आचार्य सोमदेव—

'अजितेन्द्रिय व्यक्ति को कोई सिद्धि प्राप्त नहीं होती।

जो अनग (कामवासना) से पराजित होता है वह पुष्ट अग वाले शत्रुओं को कैसे जीत सकता है ?

अजितेन्द्रिय व्यक्ति का अनुष्ठान हस्ति स्नान की भाति विफल होता है। 'भारतीय साहित्य मे एक ही स्वर मुखरित हो रहा है—'दस लाख योद्धाओं को जीतने वाला जयी और अपनी इन्द्रियो को जीतने वाला परमजयी होता है।' 'वीर वह नही जो रणभूमि मे जीतता है किन्तु वीर वह है जो इन्द्रियो को जीतता है।' पृथ्वीराज चौहान की पराजय का हेतु क्या विलास नही है ? क्या इतिहास इस बात का साक्ष्य नही है कि गुप्तचर सुन्दरियो ने सेनापतियो को पराजित किया है और उनकी पराजय समचे देश की पराजय का कारण बनी है ?

इस उद्धरण-शृखला के बाद विद्यार्थियो के मन मे जिज्ञासा उत्पन्न हुई। अब वे इन्द्रिय-विजय का व्यावहारिक लाभ जानने को उत्सुक थे। मैंने उनकी जिज्ञासा का आदर करते हुए कहा—'मनुष्य रथिक है। शरीर रथ है। बुद्धि सारथि है। मन लगाम है।

इन्द्रिय घोडे है। विषय क्रीड़ा-प्रागण है। मन-रूपी लगाम बुद्धि-रूपी सारथि के हाथ मे नही होती है तो इन्द्रिय-रूपी घोडे भटक जाते है और रथ क्षतिग्रस्त हो जाता है। इन्द्रिय-विजय का अर्थ है लगाम को सारथि के हाथो मे सौप देना। इसका फलितार्थ है मन पर बुद्धि का नियत्रण, इच्छा पर ज्ञान का नियत्रण।

अधिक खाकर स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाले वे होते है, जिनकी इच्छा पर बुद्धि का नियत्रण नही होता।

अधिक विलासिता मे फॅसकर स्वास्थ्य को बिगाडने वाले वे होते है, जिनकी इच्छा पर बुद्धि का नियत्रण नही होता।

जहा इच्छा बुद्धि की आवाज को सुनती है वहा मनुष्य की प्रवृत्तिया पथगामी होती है। जहा इच्छा बुद्धि की आवाज को अनसुना कर देती है वहा मनुष्य की प्रवृत्तिया उत्पथगामी हो जाती है। कछुआ जैसे अपने सारे अगो को अपने मे समेट लेता है वैसे ही जो आदमी अपनी इन्द्रियो को अपने मे समेट लेता है उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

भारतीय चितन का निष्कर्ष यह है

आपदा कथित पन्था , इन्द्रियाणा मसयम ।

तस्मात् ...पदा ...र्गा, ...ष्ट ता ...त्‌ ॥

इन्द्रियों का ... आपदा ... है। ...
... है। ... प्रकार ... विश्वास नहीं है। ... प्र ... आप ... है। ... है। ... आप ... इच्छा को उस पर करें।

... रोग ... प्रवृत्त ... पिशाचिनी ... विनीत ...
था।

विमर्श

१ इन्द्रिय विजय कौन है—...।

२ इन्द्रिय विजय का व्यावहारिक ... है?

इन्द्रियों ... क्या हानि ...?

संतुलित जीवन

एक दिन दो युवक मेरे पास आए। वे दोनो वनस्पतिशास्त्र के विषय मे महानिबन्ध लिख रहे थे। आधुनिक विद्या से पूर्ण परिचित थे। भारत की प्राचीन विद्या के प्रति उनके मन मे जिज्ञासा थी। पर एक अवरोध के कारण उन्हे आगे बढने का मौका नही मिला। बातचीत के सिलसिले मे उन्होने अपने मन का अवरोध मेरे सामने रख दिया। वे बोले 'भारतीय धर्मों ने वैराग्य (या निवृत्ति) पर अधिक बल दिया। इसीलिए भारतीय लोग युग की दौड में पिछड गए। हम सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक सभी विकास-क्षेत्रो मे पीछे चल रहे है। हमारी भाग्य-वादी मनोवृत्ति ने हमे पुरुपार्थहीन बना दिया। भारत का साधारण आदमी इसी भाषा मे सोचता है 'जो भाग्य मे लिखा है वह हो जाएगा। जो भाग्य मे नही लिखा है वह हजार प्रयत्न करने पर भी नही होगा।' इस प्रकार धर्म और कर्मवाद की चर्चा करते-करते उनका मन आक्रोश से भर गया।

मै उनकी बात को बडे धैर्य के साथ सुनता रहा।

जब उन्होने अपना वक्तव्य पूरा किया तब मैंने कहा—'भई! तुम ठीक कह रहे हो। भारतीय लोग सामाजिक विकास के क्षेत्र मे पिछडे हुए हे। इसका दोष वैराग्य के सिर पर मढना चाहो तो मढ सकते हो। किन्तु सचाई यह है कि यह वैराग्य की धारा का दोष नही है, यह दोष एकागी दृष्टिकोण का है।

मेरी दृष्टि मे भारतीय जीवन-पद्धति सतुलित जीवन-पद्धति है। इसमे काम और अथ, मोक्ष और धम—इन चार पुरुषार्थो का सामजस्यपूण स्थान रहा है।

काम मनुष्य की मौलिक मनोवृत्ति है। उसकी पूर्ति अथ के द्वारा होती है। मोक्ष मनुष्य का अन्तिम ध्येय है। उसकी उपलब्धि धम के द्वारा होती है।

काम और अथ के बिना सामाजिक जीवन चल नही सकता, इसलिए समाज उनकी उपेक्षा नही कर सकता। मोक्ष और धम की भावना और आचरण के बिना काम और अथ की निरकुशता पर अनुशासन नही किया जा सकता। इसलिए उनकी भी उपेक्षा नही की जा सकती।

भारत के पुराने समाजशास्त्री काम और धम की मर्यादा के बारे मे बराबर सोचते रहे है। उनका

अभिमत यह है कि काम, अर्थ और धर्म इनमें से किसी एक का अतिसेवन नहीं होना चाहिए। काम का अतिसेवन अर्थ और धर्म को हानि पहुंचाता है। अर्थ का अतिसेवन काम और धर्म को हानि पहुंचाता है। धर्म का अतिसेवन काम और अर्थ को हानि पहुंचाता है। इसलिए इनका संतुलित सेवन होना चाहिए। काम का सेवन उतना ही मान्य हो सकता है, जो अर्थ और धर्म को बाधित न करे।

यह समाज का सर्वांगीण दृष्टिकोण है। क्या यह समाज की प्रगति में बाधक है?

मैंने अपना वक्तव्य पूरा कर उन युवकों की आकृति को पढ़ा। मुझे लगा जैसे मैंने दूध के उफान पर पानी सींच दिया। वे एकांगी दृष्टिवाले धार्मिक और सामाजिक व्यवहारों को देखकर भारतीय चिन्तन के प्रति क्रुद्ध थे। उन्हें भारतीय समाज-शास्त्रियों के सर्वांगीण दृष्टिकोण की कल्पना ही नहीं थी।

उन्होंने जिज्ञासा के स्वर में कहा क्या हमारी जीवन-पद्धति में वैराग्य का ऐकान्तिक मूल्य नहीं रहा है?

रहा है, किन्तु उन लोगों के लिए, जिन्होंने सामा-

जिक जीवन से पृथक् होकर सन्यासी का जीवन जीना पसन्द किया है । सामाजिक जीवो के लिए वैसा नही रहा है । उनके लिए वैराग्य का मूल्य सीमित रहा है ।

यह एकागिता क्यो चल रही है ?

—पिछली दो-चार शताब्दियो मे भारतीय मानस परतन्त्रता से बहुत प्रभावित रहा है । उसके व्यापक चिन्तन का स्रोत रुक-रुककर बहा है । इस अवधि मे एकागी दृष्टिकोण अधिक पनपा है । स्वतन्त्र भारत मे फिर से सर्वागीण दृष्टिकोण को व्यापक होने का अवसर मिल सकेगा ।

इस एकागी दृष्टिकोण से क्या कोई हानि नही हुई है ?

—अवश्य हुई है । एकागी दृष्टिकोण और व्यवहार को देखकर अनेक बुद्धिजीवी लोग धर्म को अनावश्यक मानने लगे है ।

क्या धर्म हर व्यक्ति के लिए आवश्यक है ?

मेरी दृष्टि मे वह आवश्यक ही नही, अनिवार्य है ।

यह क्यो ?

—अर्थ का अर्जन अनिवार्य है, काम अनिवार्य है, तब धर्म की अनिवार्यता कैसे नही होगी ? धर्म की अनिवार्यता इसलिए है कि काम और अर्थ के सेवन से

उत्पन्न होने वाले दोषोंपर उसके बिना कोई नियन्त्रण नहीं कर सकता। क्या तुम स्वीकार कर सकते हो कि अहिंसा और मैत्री के बिना सामाजिक जीवन चल सकता है?

क्या तुम स्वीकार कर सकते हो कि सत्य और विश्वास के बिना सामाजिक जीवन चल सकता है?

धर्म और क्या है? अहिंसा का आचरण और सत्य का पालन। केवल अर्थ और काम के आधार पर चलने वाला समाज और उसकी जीवन-पद्धति मानसिक अशान्ति से मुक्त नही रह सकती।

मैंने उन पर अपना विचार थोपने का प्रयत्न नही किया, फिर भी मैंने पाया कि संतुलित जीवन-पद्धति का विचार उनका अपना ही विचार है।

विमर्श

१ क्या वैराग्य सामाजिक विकास मे बाधक है?

२ एकांगी दृष्टिकोण से क्या हानि होती है?

३ धर्म क्यो अनिवार्य है?

हित-सिद्धि . हितो का सामजस्य

दो मित्र थे। एक था माली और एक था कुम्हार। इनकी मित्रता हार्दिक नही थी। उसका आधार स्वार्थों का समझौता था। एक दिन वे दोनो अपने गाँव से शहर मे जा रहे थे। पास मे एक ऊँट था। उस पर माली की सब्जी और कुम्हार के घडे लदे हुए थे। माली के हाथ मे ऊँट की नकेल थी। वह आगे चल रहा था। रास्ते मे चलते-चलते ऊँट पीछे मुह कर सब्जी खाने लगा। कुम्हार ने देखा पर कुछ किया नही। उसने सोचा, सब्जी खाता है, इसमे मेरा क्या बिगडता है। माली ने मुडकर देखा नही। ऊँट बार बार खाने लगा। घडो के चारो ओर सब्जी बँधी हुई थी। सब्जी का भार कम होते ही सतुलन बिगड गया। सब घडे नीचे आकर गिरे और फूट गए।

मौर्यकाल मे पाटलिपुत्र नगर (वर्तमान पटना) बहुत समृद्ध था। उस समय वहा चन्द्रगुप्त का पौत्र और बिन्दुगुप्त का पुत्र सम्राट् अशोक राज्य कर रहा था। उसके एक पुत्र का नाम कुणाल था। कुणाल

अभी शिशु था। फिर भी सम्राट् ने उसे उज्जैनी का राज्य दे दिया। कुमार कुणाल को उज्जैनी ले जाया गया। वह वही रहने लगा। एक दिन वहा से पत्र आया कि राजकुमार अब आठ वर्ष पूर्ण कर नवे वर्ष में चल रहा है। सम्राट् ने उसके उत्तर मे लिखा अब राजकुमार को पढाना शुरू किया जाए। मूल शब्दावलि थी "कुमार अधीयताम्।"

कुणाल की सौतेली मा सम्राट् के पास ही बैठी थी। उसने सम्राट् से पत्र लिया और उसे पढा। सम्राट् का ध्यान चुराकर उसने एक हलन्त् नकार और जोड दिया। उससे 'कुमार अधीयताम्' (कुमार को पढ़ाओ) का 'कुमार अन्धीयताम्' (कुमार को अन्धा कर दो) हो गया। सम्राट् के मन में कोई पाप नही था। उन्होने पत्र को फिर पढा नही। उसे मुहर-बद कर दूत को सौप दिया। उज्जैनी के अधिकारी-वर्ग ने पत्र पढा तो सब अवाक् रह गए। राजकुमार ने कहा "मेरे मौर्यवश मे सम्राट् की आज्ञा अनुल्लघनीय होती है।" उसने ननुनच किए बिना लोहे की गर्म सलाख मंगा उन्हे आँखो में आज दिया। राजकुमार अधा हो गया।

सम्राट् को जब इसका पता चला, उन्हे बहुत दु ख हुआ। किन्तु अब उनके पास करने के लिए कुछ नही बचा था। एक अधा राजकुमार उज्जैनी का शासन नही चला सकता, इसीलिए सम्राट् ने कुणाल को एक छोटे गाव का शासक नियुक्त कर दिया और उज्जैनी का शासन दूसरे राजकुमार को सौप दिया।

महारानी की इस प्रवृत्ति ने राजकीय वर्ग की निष्ठा मे एक दरार डाल दी। उसका परिणाम यह हुआ कि मौर्य साम्राज्य का अनुशासन शिथिल हो गया।

हर आदमी का हित दूसरे आदमी से जुडा हुआ है। सतह पर खडे होकर देखते है तब हमे प्रतीत होता है कि समाज मे हितो का सघर्ष है। किन्तु गहराई मे जाने पर प्रतीत होता है कि एक आदमी का हित दूसरे आदमी के हित से सबद्ध है। जो लोग दूसरो के हितो को नष्ट करने का प्रयत्न करते है वे जाने-अनजाने अपने ही हितो को नष्ट करने का प्रयत्न करते है।

विमर्श

१ हित-सिद्धि से क्या तात्पर्य है, सविस्तार लिखिए ?

२ इस पाठ से हमे क्या शिक्षा मिलती है ?